



हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२



पत्थर युग के दो युग

आचार्य चतुरसेन

Mahesh Suroop Bhatnagar

V. 1. 2 No. 2728

CH. BANERJEE & CO., 10, NARAYAN GOLL

RANI LAZAR, BIKANER

© कम्पन हिमाली कानुन

३



लिय : हो रूपये

पत्थर-युग के दो बुत मुझे मिले हैं—
 एक श्रीरत, दूसरा मर्द
 जमाने ने इन्हें सभ्यता के बड़े-बड़े लिवास पहनाए
 इन्हें राजाया-संवारा, सिखाया-पढ़ाया
 जमाना आगे बढ़ता गया
 और वह सभ्यता के शिखर पर जा बैठा
 पर ये दोनों बुत अपने लिवास के भीतर आज भी
 वैसे ही पत्थर-युग के बुत हैं
 इनमें एक बाल बराबर भी अन्तर नहीं पड़ा है
 एक है श्रीरत और दूसरा है मर्द—

बना बनाईं विम क इम त्र सीमेना माविन मृण
बन्द विनके, तिनही धाना धानिनी मममा धा म

पत्थर-युग के दो बुत

रेखा

प्रातः यह उनका पाचवा 'बर्षडे' है, भादो के बाद। जिनमें से वे चषन का मे ही घर पर हाडिर रहे—यहने ही बर्षडे पर, जो सायद हमारे दिवाड के पाच मत्रीग बाद ही पडा था। उत समय तक तो मेरे मन का मचोन को भिभक भी नहीं मिटी थी। उस समय मेरी धावु टकरीन बरस की थी और उनकी बलीग बरस की। वे केन्द्र में उम समय जिन मन्थालय में उपसविष थे। उनका रुपाबदार चेहरा, मेघ-गर्जन-सा स्वर-घोष बलिष्ठ गौर जरीर, बडी-बडी उभरी हुई धाने टडी हुई नाक और घोर-गम्भीर भाष-भमिमा तब ऐसी थी कि मैं उन्हें देखते ही सहम जाती थी। बालधीश का उनका डग हाकिमाना था। सब बानों में जैसे वे आज्ञा ही देने थे। नीकर-बाकर, चपरामितो भी—पी० ग० मेफो टरी और दपनर के दूमरे कर्मचारियो की एक कौज सदैव उन-क पीछे लगी रहनी थी। एश के बाद दूमरी फाइलो के सदुर लेकर उन-के दपनर के कर्मचागीगण घाने, महमे-सहमे-से उनकी कुर्सी के पीछे घडव में खडे होने, उन-क हम्नाधर बाराते। हस्ताधर करने-बाराते थे उनगे बीच-बीच में कुछ प्रश्न करने। प्रदनों का उत्तर देते हुए उनके पी० ग० मेफो टरी की जबान लटलटा जाती। उनके मेत्रो से मेत्र मिलाकर जवाब देने का जिमीको माह्य न होता—बहुधा उनमे से घनेको के चेहरे पर पनीना घा जाता। चपरामी पत्यर की भूति की भागि घण्टो घबल उनके सरेन की प्रनीशा में खडे रहते। यह सब मैं देखती—घोर देखकर मैं भी उभी भाति उड-स्तब्ध रह जाती। उनके निकट जाने, उनमे बात करने में मुझे डर भयता था। मैं घधर जाती थी। क्यों न घधरती भना ? मैं तो एक साधारण गुरुक्ष भी कम्पा हूं। मेरे पिता के घर पर तो केवल एक ही भौकर घर का सब काम-घन्वा करता था।

पिताजी उसके साथ परिवार के एक सदस्य की भांति ही व्यवहार करते थे। वह हमारा पुराना नौकर था। मुझे उसने बचपन में गोद लिया था। वह मुझे 'चिटिया रानी' कहता था। विवाह होने के बाद तक भी वह इसी तरह कहता रहा। मैं उसे 'दादा' कहती थी। मां उसे बहुत मानती थीं। और वह हमारे सारे ही दुःख-सुख में सम्मिलित था। शिता की मैं इकलौती बेटा हूँ। तीन भाई हुए, और जाते रहे। मां उनकी याद कर-करके रोती रही। बहुत बार उन्होंने मुझे छाती से लगाकर मेरे भाइयों की स्मृति में धासू बहाए। बदाचिन्त इसीसे माता और पिता का सम्बन्ध प्यार मुझ पकेली पर उमड़ गया था। इतना प्यार भी किसी-को मिल सकता है, यह मैं तब नहीं, पर अब सोचती हूँ—उनसे दूर होकर, उनकी स्नेहमयी गोद से खिनी जाकर।

चारम्भ में पिताजी ने मुझे स्वयं ही पढ़ाया। उस पढ़ाने में कितना दुःखार था! ये बचपन की बातें हैं पर उन्हें भूलो नहीं हूँ। भूल सकती भी नहीं हूँ। इसके बाद स्कूल-नालेज, नालेज की सहेलियाँ, विवाह के पूर्व का वह निर्द्वन्द्व जीवन, जब शोशव विदा हो रहा था और जीवन धान्य-बिचौनी के नेल सेल रहा था, गुदगुदाता था, सितलिलाता था, सूना था, पर दीखना न था। कैसा मनमोहक था वह सेल! कितना मन को भाता था! कितना हृमनी थी मैं, और कितनी बातें करती थी—धान्य मोचनी हूँ तो सोचती ही रह जाती हूँ। बाल-बाल पर मचलती, मां की गोद में दिर जानी, जैसे सभी भी मैं एक दूधपीनी बच्ची थी। और मां भी सभी जैसे मुझे बंसी ही दूधपीती बच्ची समझती थीं। ऐसा दुःखार करती थीं। मुझे तो याद नहीं, मैंने कभी मां का कोई धपराय धिया हो, या मां ने मेरी कोई भूल-बुद्ध धपराय मानी हो। और पिताजी, बेचारे ऐसे निरीह-निष्ठाप—ज्यों-ज्यों मैं बड़ी होती गई, मेरे धनु-बन होने गए। उनपर मैं निर्द्वन्द्व धामन चलानी, ओ चाहनी करती लेनी। मेरी कितनी इच्छा में वे बाधक न हुए। मेरी हर नृटि पर वे हंस देने। मेरे हर हृड को वे धासों पर लेने। सवानी होने पर मैं मां के हाथ धर के धासों में हाथ बंटाती। पिताजी के लिए एकाध गन्धी धपने हाथ के उकर बनानी। पिताजी मुझे 'राजा' के नाम से सम्बोधन करने के। वे मुझे पुनी नहीं, पुन मानने थे। उनके मुह से 'राजा' सम्बोधन

कितना प्यारा लगता था मुझे ! धात्र भी मेरे कानों में बहु प्यारा संबोध गूँजता रहता है । चाय को तनिक देर हुई कि चिताभी बहते—रात घेटा, धात्र हमे चाय नहीं मिली । खोर में घर-धांगन में धानी बरह हसी बघेरती जाती उनके पास चाय का प्याला लेकर ।

वे दिन मेरी घासों में घब भी बस रहे हैं । घभी केवल पाँच बरस तो हुए । मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद में रमे हुए हैं वे दिन, भला भु कैसे सकती हूँ । रत्नु मुझे इस अवलन्त वैभव में बकेलकर जैसे निरपरिचित प्रिय दिवस बले गए, जैसे ही बले गए मेरे वे माता-पिता—मेरी धाया के धाधार और मेरे जीवन के निमज्जा, प्रेम, न्याय, और धात्रदान के महादाता ।

उस घर मे और इस घर मे भला क्या समता ? उम जीवन का इस जीवन मे लो जमीन-धासमान का अन्तर है । घब लो मैंने अपने । इस जीवन का धम्यस्त बना लिया है, सब कुछ परष गया है; पर ल लो सब कुछ पराया-सा, घटपटा-सा, अपरिचित-सा, अप्राह-सा लग पा ।

हां, मैं उनकी बात कह रही थी । यही बात उनके सम्बन्ध में की बहुत साहस करने पर भी मैं उनके निकटतम न हो सकी, बहुत निक । ऐसा प्रतीत होता था—एक पर्वत मेरे सम्मुख खड़ा है, कैसे इ पर चढ़ूंगी ! मेरे नन्हे-नन्हे पैर धायल हो जाएंगे । कितना ऊँचा कितना बड़ा, कितना कठोर है यह पर्वत ! फिर भी मुशोमन है, दर्श नीय है, भम्य है । ऐसा ही लो दुसहू था उनका ध्यक्तित्व ! पर वे लो हैं, यह एक बात मेरे मन में दिन मे लो बार उठती थी—वे घासों के सामने रहने मे लव भी, और नहीं रहले मे लव भी । यही बात मैंने मुझसे कही थी, जब उन्होंने धालुषों से धयनी ध्यती तर कर लीई । और वही एक बात कहकर मुझे उनके साथ भेत्र दिया था । ११६, यह लो खौर में समझ गई, जान गई, किन्तु क्यों हूँ यह न लहटाई—

कहा नर नर मी छोड़ सक का भी । कब सींचो पत्नी — पत्नी नहीं,
 माना है । तेरे भी शान मानू ब्रह्म गोचरता रसा — गुरु कुम्भ है । एका
 हृद हो नहीं है, अभिन्न है । ये मैं हूँ धीरे मैं ने है ।

उन्होंने ब्रह्म पत्नी ब्रह्म मुझे पत्नी विनाश भूनाओं से समस्त मेरे
 कष्टों से पत्नी पर पत्नी ब्रह्मन सर्व-सर्व बुद्ध्या पत्नी विना, ब्रह्म मुझे
 तेना प्रभो न हुआ जैसे ब्रह्मकार की विगी दुर्दशा गच्छि ने मुझे उल्ला-
 का उग दुर्गोद्भव सर्व न की उल्ला पत्नी पर केंद्र दिया । धीरे धीरे
 धारण ने मुझे भर भोर साया । मैं हाँफने लगी । परन्तु इनके बाद मैं
 जैसे ब्रह्म छोटी-सी निरीह काँटिया न रह गई । नारी की काँटिया ने जैसे
 मुझे दबाव दिया । मैंने उन पर्वत के उल्ला विनाश पर मे देना, भागा
 मया नुम्भ-मा, छोटा-मा लग रहा था । धीरे हमारे बाद मैंने देखा
 उनका स्वप्नद्वन्द्व हास्य, उल्लास पाञ्चाल, उल्लास, उल्लास प्यार धीरे
 प्यार का प्रथम उल्लास, विनाश धीरे भोग का ऐश्वर्य तो सब मैंने
 चारों ओर विस्तरकर ब्रह्म रहा था, मधेरे में न मधेरे जा मरणा था ।
 धनिर्वचनीय था ब्रह्म । मैं खूब गई धीरे; विन्दु के ? के विन्दु के जा रहे थे,
 धानन्द का, प्यार का, उल्लास का मधुट प्रयास, पत्नी निर्कर की साँच
 भर-भर-भर-भर ।

यह सब उनके उन रूप में भिन्न था, जो मैंने जाने पर देखा था,
 जिम्मे मुझे भयभीन कर दिया था । मैंने जाना—उनकी वह महता,
 गान धीरे प्रभाव धीरे के लिए है, मेरे लिए प्यार है हास्य है, धनिर्वचनीय
 है, बुद्धन है, धान्वापण्य है । यह देखकर मेरे भीति नाश गई । अभिन्न
 दृष्टि उदय हुई । प्यार का एक धंङ्कुर उठा धीरे देखते ही देखते मुझे—
 मेरे प्राये की धनिकान्त कर गया । मूढ गई मैं करने को—धरने नारी-
 जीवन की, धरने तन की, मन की, धरनेपन की । रह गई धीरे ब्रह्मवन्
 धाधारनिता, बन्धित बाहुओं का वह धावेष्टन, बुद्धन का वह
 महादान । धीरे मैं गरिमा में डूब गई । नहीं गया वह शीघ्र व मान-
 लोला, भावा पिता का वह लाड़-प्यार, जिने जीवन का सब नर धाधार
 समझती रही । धव तो ऐसा लग रहा था—वह सब तो एक स्वप्न
 था—वास्तविक जीवन तो सब धारण्य हुआ है; इसील्ल वर्ष की धव
 में । धरने ही भौवर मैंने धरने की नया जन्म धारण्य करते देखा—इस

नये जन्म के बाद मेरा जीवन भी मशीन हो गया। सब हमकी उम्र कतौन सीमा से भला क्या गुणना हो सकती थी।

दुर्भाग्य ही बड़ना घाटिए कि हम बीच मेरे माता और पिता स्वर्ग-वासी हो गए। पर अपने सौभाग्य के ऐश्वर्य से मैं ऐसी मदहोश थी कि यह दुर्भाग्य मुझे कुछ लला ही नहीं। यह तो मैंने समझा कि कुछ मेरा धनना गो गया, पर उमरो मेरी कुछ हानि हुई, ऐसा तो मैंने समझा ही नहीं। परन्तु वही मेरी बुद्धि पर, मेरी स्वार्थपरता पर, मेरी मूर्खता पर। मैं ऐसी मन्त्राली हो गई कि माता-पिता की उमरों को एक-द्वारगो ही भूल गई - जिनने पूरे दक्षीण वरम तक अपने वास्तव्य से मुझे जीवन व राजमिहासन पर ला बिठाया था। हां, मैं रोई थी, पर उन्होंने मुझे धरिक्त होने नहीं दिया, मेरे घामू-भरे नेत्रों पर पुष्पन के पनगिनन धन धरित करने पीली धारों को सूखा कर दिया। मैंने देना, जिनके का सहाय छोकर मुझे सब विनाश बटवृक्ष का सहारा मिल गया। समार की सब बुद्धियों की भांति मैं भी मूड अहम्मग्यता की गिहार बन गई। माता-पिता को मैं भूलती घती गई।

और सब घाया उनका जन्मदिन। उनका यह बत्तीसवां जन्मदिन था। पर मेरे लिए पहला ही था। सभी पात्र ही महीने तो मुझे ब्याह-कर पाए हुए थे। इसी बीच प्यार के मुन और माता-पिता के बिछोह के दुःख ने मुझे झरझोर डाला था। मैं कुछ सोई-सोई-सी रहती थी। वे घाटिम जाने तो मैं घर से सोने-जागते, उन्हीका स्वप्न देखती। वही घाटिमन, वही चुम्बन वही बच्चहास पहाट को हिला देने वाला, वही बच्च-बछ और प्यार की चिनवन एव धनीन्द्रिय घातमद का चरम घादान-प्रदान। मेरा मूडम शरीर संहराता रहना उनकी मानम-मूर्ति के चारो ओर, दुनिया मे और भी नहीं कुछ है, मैं नहीं जानती थी, नहीं देखती थी। मेरे शरीर के भीतर मेरे रक्त की प्रत्येक बूट मे उनकी जमनीय मूर्ति बसी थी, और मेरे नेत्रों के बाहर सूरज के प्रकाश से सुघोषित रगीन विश्व में तथा सबल चन्द्र-क्योत्सना की उज्ज्वल लटा मे वे ही दीग पडते थे—केवल वे ही।

और जब वे सशरीर मेरे सामने था लडे होने से तब जैसे विश्व मे असरव लों मे गिहारी हुई उनकी मूर्तियो सिमटकर एकीभूत हो गई

हो—ऐसा मुझे मान होना था। क्या कहूँ मैं पानी बान, मैं दीवानी हो गई थी। मैं प्रेम-हवा में ली थी। किम भाग्यही को कभी प्रेम का ऐसा मगानक बुभार नडा होगा। किम नारी ने प्रेम का यह उगमन उभार कर देना होगा।

एक दिन एकमात्र ही उम्मीने साकर मुझने कहा, "बाद मेग बर्षडे है।" और शान ही कालों के नोटों का गदुर मेरे हाथ में दम दिया। मुझमिष भी घांते माम को, जैगा ठीक गवको व्यवस्था करना और एक घण्टी-नी गाडी बनने लिए ले घाना।" वे गो इना कहकर और एक मुम्बन मेकर घादिय बने गए। और मैं उन नोटों के गदुर को हाथ में लिए जड बनी बैठी रही। क्या कर्म, मेरी मगम में नहीं था रहा था। बचपन में मेरे माता-पिता मेरा जन्मदिन मनाने थे। मेरे लिए मिठाइयां घानो थीं, नये कपडे घाने थे, पिचोना और लौगन घानो थे, पर वे सब तो बचपन को बाने हैं। वे तो बच्चे नहीं हैं, फिर यह बर्षडे कैसा मनाया जाएगा! परन्तु शीघ्र ही मेरी जडता दूर हो गई। मन स्फूर्ति मे भर गया। तभी घादिय का चपरासी का उभयित हुआ। उमने कहा, "गाडी ले घाया हूँ। घलिए बाजार से जो-जो खरीदना है ले घाए।" और मैं न जाने क्या-क्या खरीद लाई। चपरासी ने भी बहुत मदद की। मिठाइया, नमकोन, फल, बिस्कुट, पेस्ट्री, मुरन्ने, पापड और न जाने क्या-क्या? कौन-कौन घांते, यह मैं नहीं जानती थी। क्या होगा, यह भी नहीं जानती थी। पर ज्यों-ज्यों खोज में खरीदती जाती थी, मेरा दिन उमम में हिलोरें लेता जाता था। मैंने एक मासमानी रंग की साडी भी खरीदी। बहुत मायापच्ची करती पडी मुझे। न जाने उनको पसन्द घाएंगी भी या नहीं। मैंने तो पद घपना घापा ही लो दिया था—उन्हींको घास से घपने को देखती थी। साडिया पसंद ही नहीं घा रही थीं। घन्त में बहुत-बहुत हिचकिचाहट के बाद एक साडी खरीदी और एक मफलर लिया उनके लिए भी। चपरासी ने मैंने बहुत सलाह-मशवरा किया। बेचारा बूडा बाह्यण था। और सब नौकर-चाकर घाफिसवाले मुझे 'मेम साहब' कहते थे, पर यह बूडा बाह्यण मुझे 'भाडी' कहकर पुकारता था। बडा मना लगता था मुझे इसके मुंह से माजी कहना। मुझे घाद घाता था—पिता के घर का

बूझा नौकर रामू, जो मुझे 'बिटिया रानी' बहुर पुरकारता था। मैंने
 घर के बड़े-बूढ़े की भाँति इस बाह्यण सेवक से कुछ सलाह-मसलहा
 करके एक-एक चीज खरीदी थी। कौन-कौन-सा दूध पीसना होगा—
 इग्नर मैं इस बूढ़े चपरासी की राय को एकदम में ही नहीं। बहुत
 ही सामग्री खरीदकर मैं लगी।

बड़ी घुमघाम रही रात को धीरे-धीरे सोई जा गई। एक गार्ड ने
 संगीत-गान किया। हंसी-मजाक, मुझे, 'सानी-सानी' पूरा हुआ।
 रिश्तियाँ भी आईं। पुरुष भी आए। संकेत में ही परिचय हुआ। भस्कर
 का आदान-प्रदान हुआ। आनन्द के एक-एक तर्जनी-निराला मुझसे ही रूप
 मैंने देखा।

धीरे-धीरे सब लोग जाने लगे। इस-इसकर बधाइयाँ देते जाते थे,
 सब सम्मान्त पुरुष-स्त्री मुझे बहुत भले लग रहे थे। बर्षों का यह
 त्योहार मेरे मानस-घटन पर घर कर गया। सब चले गए—पर उनके
 कुछ अंतरंग मित्र भीतर के कमरे में अभी जमे बैठे थे। वहाँ उनका
 'ट्रिक' चल रहा था। इस ट्रिक से मैं पहले अपरिचित थी। धाराब से
 पीते थे—यह मैं जान ली गई थी, पर धाराब कैसे पी जाती है, यह न
 जानती थी। घर में वे धाराब नहीं पीते थे। बहुत दिन बाद पता चला
 कि विवाह से प्रथम पीते थे—विवाह के बाद घर में बन्द कर दिया
 था—कलब में जाकर पीते थे। इन पाँच महीनों में मैंने उन्हें एक बार
 भी मदहोस नहीं देखा था। धाराब की तेज महक अवश्य उनके मुँह से
 आती थी; पर वह महक कैसे है, यह मैं नहीं जानती थी। धर्म के बारे
 पूछ भी न सकती थी। कभी-कभी मुझे सहन नहीं होती थी। फिर भी
 मैं अपनी स्थिति को नहीं प्रकट करती थी। विन्तु आज मैंने देखा।
 सबके जाने पर उनके तीन-चार अन्तरंग मित्र पीने बैठे थे। मैं उस मंडली
 में नहीं गई। कोई स्त्री उस मंडली में न थी। सब पुरुष ही थे। वो वे
 मुझे बुलाकर अपने मित्रों से परिचय कराते थे। पर इस बात नहीं
 बुनाया। रात बीतती जा रही थी और मैं उनके घंठ में समा जाने को
 छटपटा रही थी। पर यह मंडली तो अभी बँटी थी। रामचरन चपरासी
 से—उसी बूढ़े बाह्यण से—मैंने पूछा, "वहाँ अब वे क्या कर रहे हैं ?
 खाना-पीना तो सबका कब का खत्म हो चुका।" बूझा चपरासी सब

•

बातना था। रात दिन बड़े चरमगर्मी में रहता था। अगले सुबह के
 बात किसी थी। वह बड़ सुबह में सब बातें सोचकर अपना बड़ी चरम
 था। जब बड़ मीने गुला, ता गुल। मरी बरतन गुल दिना, "अपना दि
 बड़ना बड़ है मारी। सुनी के मोह पर ना लेना बरतन ही है। मर
 पाइपी बँडे है।" बहुत बात गुला पर बरतना, "दिना हो गया है।"।
 दिना बरतन होना है, बड़ भी गुले बरतना ना बरतना गुल गुल।
 अफसान इम मरत के मरतन पीत है। बहुत मरतियों की हीन मने
 मरी डानन क देना था। मैं इम मरी थी, केवैक हो गयी थी। स नि
 बरतन बर बर दिना का हीन नाम गुला। एक-एक कर के अफसान वि
 भी अफानी-अफानी मोटियों में बँडना मरतना ही मरत। मरत एक बड़
 दिनीयदुमार मरत मर-दिना के बरतन मरतें ही। के मरतने मरतने पा
 थे, पीर मरतने पीरते मरत, मैं देना — मोये इम मे मरी, हो मरतियों
 उम्हे मरतकर मारी म हावा। के भी मरतन मरत उनके मरत थे। मर
 पीरते तो उनका रंग-रंग देमरत मैं मरतने की हावना में मरत गई। उन
 मरत मरतना मरत थे, पीर के मरतना-मरतना मरत मरतें थे। उनमें म
 से जो मरत निरम मरतें थे, उनमें मे बरतनों की मैं मरी मरतन मरी—
 मरत बनी हुई मरती उनकी मरत देना देना मरी थी। के एमएक मेने ऊ
 मरत गुल; मने हनकी भागा में प्यार-मुहमरत की बरतें मरतने, मरत
 मरतियों के मरतने ही। उनमें मरत में मरतन की मरत मरत मरत
 थी, पीर मरत मने मरतना कि मरत मरतन की ही मरत थी—जो म
 उनके मरत में मरती थी। उनकी इम मरतियों कुचेष्टा में मैं निरमि
 उठी पीर उनके मरतियों मरतन से मरतकर मैंने उम्ह पीर मरतन दिना
 के मरत पर मरतकर मरतन हो गए।

मैं मरतन गई। मरतन पीर एक मरतने ने उम्हे मरतन प
 निटाया। मरतने के कुन्दे की मरतने के बेहोश मरतन पर मरतें हुए मरत
 मरतने रहे थे। कभी मरतकुट कुन्द मरतन उनके मरतने में निरमने थे। मर
 की मरतने पर बँडे मैं उनके मरतन पर हाथ फेरती बँडे रोनी रही, एम
 मरतने में। मरतन-मरतन सब मने मने गए। मैं मरतने मरतने देना मर
 थी, मरतन के मरतने, मरतन के मरतन-मरतन के मरतने, मरतन के मरतन
 मरतने के मरतने, फिर मरतने के पीर उनके मरतने — मरतने के

दुनार के, भगानन्द के और पहाड़ की उस ऊंची चोटी पर चढ़कर, जहाँ से दुनिया छोटी सीसी थी, उसके सपने । मन्तस् की भाँसेँ सपने देख रही थी और बाहर की भाँसेँ सावन-भाँसेँ की झो लगा रही थी । हाथ भव क्या होगा ? यह रूप क्या हो गया ? — मैं मूढ़ बनी यही सोच रही थी, रां रही थी । सोचनी रही और फिर न जाने कब सो गई ।

बुद्ध प्राण खुली तो देखा, वे लठ चुके थे, वायसम से उनके गुन-गुनाने की परिवर्तित मधुर ध्वनि आ रही थी । मैं हटबटाकर लठ बैठी । वे बाहर आए और हसत हुए मेरी ओर बढ़े । मेरे दोनों हाथ अपनी मूर्ती में लहर उन्होंने प्रेम से कहा, ' रात मेरी तबियत एकाएक खराब हो गई थी । है न ; भव ठीक हू । तुमको सायद रात बहुत तकलीफ रही, ऐं ? तुम्हारी भाँसेँ लाल हो रही हैं, क्या सोई नहीं ? "

मैं रोने लगी । रोते-रोते उनके वक्ष पर जा गिरी । हाथ मैं प्रभा गिनी रात की बात क्या कहूँ भला ! यह तो मेरे लिए प्रलय की रात थी—मेरे तो सभी सपने हवा हो गए थे । पर उनसे एक बात भी मुह से न कह सकी, रोती रही । उन्होंने प्यार किया, मेरे सिर पर हाथ फेरा । उदारता और प्यार का भरपूर वही हाथ ! वही स्पर्श ! उससे जैसे मेरे नुस्ते प्राण फिर से हरे होने लगे—जैसे मूखे ठूठ में हरी कोपलें निकल आई हो ।

वे मुझे वायसम में ले गए । मुह धुलाया । फिर एक प्रवार से मुझे मरु में भरकर चाप की टेबल पर ले गए । रात क उम्माद का तो भव चिह्न मात्र भी न था । वही पर्वत के समान महान और प्यार के मुनि-मान-धरतार मेरे साथ बैठे हन-हसकर वाने कर रहे थे । अन्तन. मैं कु स्वप्न की भाँति उस रात की बात भूल ही गई ।

बहु दिन चला गया । और दिन घाए और गए । मरते गए, जाते गए । बहून घाए और गए । बहुत नई बातें पुरानी हुईं । पुरानी नई हुईं । पर शराव एक दैत्य की भाँति मेरे मानस-गटल पर चढ़ बैठी । कैसी भयानक चीख है यह शराव ! क्यों पीते हैं भला ये इसे ? बहुत मन को रोकना और भाँसिर एक दिन मैंने कह दिया, "क्यों पीते हो तुम इस जहर को ? "

वे हसे । टाल गए । टालते ही गए । परन्तु मन्तस सवाल-जवाब,

हृत्पत्र बड़ी ली वे तिनक गए। उन्होंने कहा, "ऐसी बाह्यात्म घोरत होतुम ! हर बान का जबाब तलब करती हो। मैं नहीं पसन्द करता ये सब बातें !"

बस, जैसे घाँधी का एक बवंडर भाया और उस पहाड़ की चोटी पर से मुझे नीचे धकेल गया। अभी तक इतना साफ कलान मैंने उनके मुह से नहीं सुना था। वे भी शायद यह 'फील' करने लगे। नम होकर बोले, "सोसाइटी मे यह सब करना पड़ता है बालिग, तुम इन बातों का सोच-विचार न किया करो। इसके सिवाय इससे मेरी सेहन भी ठीक रहती है। आफिस में मुझे कितना काम करना पड़ता है, कितनी बिम्बे-बारियाँ मेरे सिर पर हैं। जरा-सा सुगल न कलं तो बस मर ही मिटूं।"

वे शायद ठीक ही कहते हैं, यह सोचकर मैं चुप हो गई। पर मेरे मन में जो चोर बैठा सो बैठा। रात को जब वे क्लब से घाते तो मैं सतर्क दृष्टि से उनकी प्रत्येक हरकत को देखती। मेरी सदा की प्रसन्नता गायब हो जाती और मेरा मन खीज से भर जाता। वे भी यह बात समझ गए और मुझसे खिचे-खिचे रहने लगे। और यों मिथी में बांस की फांस का प्रवेश हो गया। मेरे सोने का महल मखिन होने लगा। मेरा उल्लास बुझने लगा। मैं खोई-खोई-सी रहने लगी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा—जैसे यह कम्बस्त दाराब एक व्यवधान बनकर हमारे बीच भा गई है। मैं चाहती थी कि मैं उनसे झगड़ा न कलं। पर अब वे और देर से घर लौटने लगे। कभी-कभी घाघो-घापी रात तक मुझे लिङ्की से मुंह दिए बैठा रहना पड़ता था; उनके लिए खाना लिए भूखी बैठी रहती थी। जब उनके मन में मेरे लिए वह सहानुभूति न थी। वे घाते और मैं उदास और ठंडे दिल से खाने को कहती तो वे हल्ले स्वर में कहते, 'मैंने तुमसे कई बार कहा है, मेरी प्रतीशा मत किया करो, खापी लिया करो। मैं वहाँ ला लेता हूँ। पर तुम सुनती ही नहीं।' भला कैसे मुनू मैं ! मर्द बन जाऊँ ? औरत का स्वभाव ही छोड़ दू !

वे यह कहकर सोने के कमरे में चले जाते और मैं बिना ही लाए-लिए एक और पढ़ रहती। घाए दिन यही होता और कभी-कभी दो-दो दिन बात करने की नोबत न घाती। घास्तिर मैं कलं क्या ? जाऊ भी वहाँ ? सोपू भी क्या ? खोवन तो बंध चुका। हृदय परकीच हो चुका।

घंन में हुंसी घोर घांगुघों का गठबधन हो गया। मैं हुंसी भी, रीती भी। प्यार का दर्द सब बेरी कीमती बन गया। पर इसका इलाज क्या था ?

फिर दूसरा बर्बडे घाया, घोर बे पाप तो हाथे मेरे हाथों में थमा-हर बस दिए। मैंने कहा, "गुनो," वे हने, कहा, "क्या ?"

"गुन्हारे हाथ ओदती हूं। इस बार यहाँ टिक मत करना।"

"घब्र्या !" बहुरर बे तेजी से थप दिए। उनका इस तरह जाना, 'घब्र्या' कहना मुझे कुछ भाया नहीं— न जाने क्यों किसी प्रमान भय ने मेरा मन मसोम दिया। मैं बाजार गई, सब सामान लाई। मन में उझाह भी था, घोर भय भी था। न जाने आज की रात कैसे बीतेगी ? विद्यने सान की सब बातें याद आ रही थीं, घोर मेरा कमेजा काँप रहा था। फिर भी मैं धन्त्रवत् सब तैयारी कर रही थी।

मेहमान घाने लगे पर उनका नहीं पता न था। मेरे पैरों के नीचे से घरती शिमक रही थी। लोग हस-हंसपर बधाइयाँ दे रहे थे, बुझन कर रहे थे। मुझे उनके साथ हंसना पड़ता था, पर दिम मेरा रो रहा था। यह तो बिना दूहने की बरात थी। बड़ी देर में घाए उनके अन्तरंग मित्र दिलीपकुमार। घाने बहुरर उन्होंने सब मेहमानों को सम्बोधित करके कहा, "बन्धुमो घोर बहुरो, बडे सेद की बात है कि एक अत्यावश्यक सरकारी काम में ध्वस्त रहने के कारण दत्त साहब इस समय हमारे बीच उपस्थित नहीं हो सकते हैं। उन्होंने क्षमा मांगी है घोर घपने प्रतिनिधिरूप मुझे भेजा है। सूत्र साइए-भीजिए मित्रो !"

इतना बहुरर बे मेरे पात घाए। मुझे तो काठ मार गया। मैंने कहा, "क्या हुआ ?"

"कुछ बात नहीं जानी, उन्हें बहुत जरूरी काम निकल गया। मासो, सब हम लोग मेहमानों का मनोरंजन करें, जिनसे उन्हें माई साहब की शेरहाजिरी घपरे नहीं।" घोर बे तेजी से भीड में घुसकर लोथी की आवभगत में लग गए। निहयाय ही छाती पर पत्थर रखकर मुझे भी यह करना पडा। पर मैं ऐसा अनुभव कर रही थी जैसे मेरे गरीर का सारा रक्त निबुड गया हो, घोर मैं मर रही हूँ।

जैसे-जैसे मेहमान बिदा हुए। मूने घर में रह गए हम दो—दिलीप-

कुमार धीरे में। उन्होंने मेरे निकट आकर कहा, "यह क्या मामी, तुम्हारा तो चेहरा ऐसा हो रहा है, जैसे महीनों की बीमार हो। क्या तबियत खराब है तुम्हारी?"

"नहीं, मैं ठीक हूँ, पर वे कब तक लोटेंगे?"

"उन्होंने कहा था कि छुट्टी होते ही मैं आ जाऊंगा। अब जब तक माई साहब नहीं आ जाते, मैं यहाँ हूँ। आप बिन्तान कीजिए। लेकिन आपने तो कुछ खाया-पीया ही नहीं है। इतने लोग खा-पी गए, जो मालिक है, बड़ी रह गया। तो कुछ खा लीजिए न—मैं खाता हूँ।" पर मैंने उन्हें रोककर कहा, "नहीं, मैं कुछ नहीं खाऊँगी, आप बैठिए।" मैंने एक कुर्सी की ओर इशारा किया। कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने कहा, "मामी, खाया-पीया तो मैंने भी कुछ नहीं। माई साहब के बर्पडे पर हमें दोनों घाटे में रहे।" वे खिलखिलाकर हस पड़े। मैंने उठते हुए कहा, "आप खाइए न, मैं खाती हूँ।"

पर उन्होंने हठ ठाना—जब तक मैं नहीं खाती वे न खाएँगे। साधारण मुझे भी बैठना पड़ा। कुछ खाया, पर मेरा मन कहीं-कहीं भटक रहा था। नहीं है वे? ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मेरे प्राण उनमें उलझे हुए हों और वे उन्हें निर्दयता से दूर बँडे खींच रहे हों। मैं चाहती थी कि वे दिनीपकुमार यहाँ से चले जाएँ और मैं जो भरकर रोऊँ।

पर वे नहीं गए। मेरे कहने पर भी कहने लगे, "आपको मकेली छोड़कर कैसे था सनता हूँ, बड़ी खराब बात है—इतनी देर हो गई अभी नहीं आए।"

हजारों प्रश्न मेरा मन कर रहा था, पर मेरी वाणी जड़ थी। मैंने अपनी सारी शक्ति अपने घासुओं को रोकने में लगा दी थी।

रामचरण पत्थर की मूर्ति की भाँति बराबरे में चुपचाप खड़ा था। सब नौकर-चाकर आकर तो रहे थे, पर यह एकनिष्ठ ब्राह्मण सेवक चुपचाप खड़ा था, कदाविन् मेरी बेइनामी का मुँह भयोदार। उनकी उत्पत्ति से मुझे डरना बंध रहा था। अन्ततः वे आए, मगर बड़ोना होकर, और रामचरण ने उन्हें उठाकर पलंग पर बाल दिया। मेरा मुँह टीडरे के लयान भाभा हो गया। मैंने बाहर आ, दिनीपकुमार से कहा, "अब घात भी आइए," और मैं उमड़ने घासुओं के वेप को न सभाज

सकने के कारण भावकर अपने शयनगृह में चुस गईं। न जाने कितना रोई। चकाचट ने मेरा उपकार किया, मैं सो गई।

घोर फिर साधारण प्रभात था। वे प्रसन्न घोर स्वस्थ चाय पर बैठे थे। मैं उनके सामने खाना नहीं चाहती थी, पर उन्होंने बुला भेजा। मैं झारकर चुपचाप बैठ गई। केतली से प्याले में चाय उँडतते हुए उन्होंने कहा, "बहो, कैसा रहा तुम्हारा कम का प्रससा ? सब ठीक-ठाक रहा न ?"

मैंने जवाब नहीं दिया। उनकी बात में कितना अंत व्यंग्य का था घोर कितना सहानुभूति था—यह मैं न जान सकी। परन्तु प्यार की तो एक बूद भी नहीं है, यह धारण जान गई। वह रात तो गत धर्य के समान थी, पर वह प्रभात वैसा न था। मुझे धुन देलकर उन्होंने चाय की चुस्की लेने-लेते कहा :

"धुप क्यों हो ? क्या नाराज हो ?"

"क्या मुझे धारसे नाराज होने का भी अधिकार है ?" मैंने कहा।

"क्यों नहीं। पर मेरा कमूर पहले साबित करना होगा।"

"भापका कमूर ? क्या एक घोरत मर्द के कमूर पर भी विचार कर सकती है ?"

"जरूर कर सकती है। यह तो स्त्री-पुरुष की समानता का युग है।"

"भाप मानते हैं कि स्त्री-पुरुष समान हैं ?"

"जरूर मानता हूँ।"

"खैर, तो बताइए, कम धारने मेरे साथ अन्याय नहीं किया ? इतने मेहमान धार, फिर धार ही ना बंधे, घोर धार गायब ! कौन-सा काम धा भला, मुनू तो ?"

"क्या तुम्हें मेरे उपस्थित न होने का कारण नहीं ज्ञात हुआ ?"

"हुआ—जब आपको उस हालत में धर धारि देखा।"

"तो बस, यह मैंने तुम्हारी भाजा का पालन किया।"

"मेरी भाजा का ?"

"बूल गई तुम, तुमने कहा था—'धार यहां ठिक न करना।'"

"सो तुमने घोर वहीं जाकर किया।"

निमन्त्रण मैंने किसीको नहीं दिया। पर सौपमालिकाओं से सजा हुआ था घोर टेबलों पर विविध पकवान सजे थे—पर मेहमान एक भी न था। मैं धनेली ही घर में थी। सब मौतुरों को भी मैंने बिदा कर दिया था। पर रामचरण नहीं गया था। वह मेरी सेवा में हाजिर था। प्रधान भव तीसरे बरग में था। उसे मैंने बिना-बिलाकर गुला दिया था। मैं सोत बंटी उस दीपावली से घाबोक्ति घर में कभी-कभी आशय में बिखरे तारों को देख लेती थी। दिलीपकुमार थाए। घाते ही कहा "वह क्या? क्या पात्र कोई मेहमान थाए ही नहीं?"

"ऐसा नहीं! घाप लो घा गए हैं।" मैंने एक फीकी मुस्कान होंठों पर लाकर कहा।

"लेकिन...लेकिन....." उन्होंने मेरे मुंह की घोर देखकर घपना काव्य घपूरा ही रखा। मैंने कहा, "घाप घपने मित्र का क्या संदेश लाए हैं, कहिए।"

"भाई साहब थाए ही नहीं घभी? बड़ी खराब बात है। लेकिन..."

"लेकिन क्या, कहिए न?"

"लेकिन यह लो बड़ी खराब बात है।"

"उनकी घैरहाजिरी में घौरों का घाना घोर भी खराब मान लोती।"

"भावद, पर भाभी, क्या घापने निमन्त्रण भेजा ही नहीं इस बार?"

"क्या घापको निमन्त्रण मिला?"

"नहीं। पर मेरी वान छोड़िए। लेकिन..."

मुझे हंसी घा गई, उस दुःख में भी। मैंने कहा, "खैर, लेकिन की छोड़िए, सबके हिस्से का घा ही लाइए-नीड़िए।"

"नहीं, नहीं, मैं जाता हूं। भाई साहब को ले घाता हूं। किन्तु घाप?"

"मेरे विषय में घाप क्या कहने लू?"

"घापने भाभी, न सादी बदली न बाल बनार।"

"मुझे इसका घ्यान ही नहीं रहा।"

"लो खैर, भव रूपसे बदल जातिए चटपट, तब तक मैं भाई साहब

दिलीपकुमार राय

ती बार जिस दिन मैंने रेखा को देखा—उसी राणु मैंने समझा वह मेरी है, मेरे लिए है। विवाह ऊपर उमरा दत्त के साथ हुआ दत्त उसका पति है—पर मर्द उसका मैं हूँ। माप जिस चरित्र की कहते हैं, मैं उसका कतई कायल नहीं हूँ। इन सम्बन्ध में मेरे अपने विचार हैं। मुझे इन बातों की परवाह नहीं है कि मेरे विचारों का त-मेल दूसरों के विचारों से बैठना है या नहीं। मैं अपने ही विचारों की समझता हूँ। मैं जिस विभाग में नौकर हूँ उसका ठीक-ठीक व परिश्रम से करता हूँ। मेरे ऊपर काम की जिम्मेदारी भी है और श्रम भी मुझे करना पड़ता है। दोनों ही बातों को मैं ठीक-ठीक समझता हूँ, ठीक-ठीक उन्हें अज्ञान देता हूँ। बिला शक गर्जमन्दों से मैं बर्त लेता हूँ, उनके काम भी कर देता हूँ। ऐसे काम माने-शीछे होते हैं। मैं गर्जमन्द लोगों की इच्छा और आवश्यकता के अनुसार कुछ कर देता हूँ, कुछ बातें जान लेने में उन्हें सुविधाएं दे देता हूँ—इस-से मेरे प्राणिक की कोई हानि नहीं होती। इनका नजराना मैं गर्जमन्दों से लेता हूँ। नियम-कायदों की अपेक्षा मैं आदमी को महत्त्व देता नियम-कायदों को तोड़कर मैं आदमियों की सहायता करता हूँ। नजर में वह आदमी की सेवा है। बस, बात इतनी ही है कि इस के बदले मैं उनसे नजराना लेता हूँ, मुझ उनका काम नहीं करता। लोग 'रिश्तत' कहने हैं। मैं ऐसा नहीं समझता। वे खुशी से देने हैं। खुशी से लेता हूँ। मूर्ख लोग कहने हैं : मनुष्य को त्याग करना हिए। मैं भी त्याग के महत्त्व को समझता हूँ, परन्तु त्यागने की वस्तु ही त्यागता हूँ, ग्रहण करने की वस्तु को ग्रहण करता हूँ। धन-दौलत-न की नहीं, ग्रहण करने की वस्तु है। तो मैं उसे ग्रहण

करता हूँ। वह मेरे काम खाता है। उनसे मैं अपनी श्रुतियाँ खरीदता हूँ। मैं जानता हूँ, दुनिया बड़ी टेढ़ी है। इसमें जलेबी जैसे बड़े दांव-बैच हैं। उनमें फंभकर पादमी की खुनी हवा हो जाती है; वह परेशानियों में, मुश्किलों में फंसे जाता है। पर मैं यह भी जानता हूँ कि पादमी की सबसे बड़ी दोषत उसके दिल की शृशो है। वह पादमी को धकड़मात ही भाष्य से मिल सकती है, यह मैं नहीं मानता। मैं तो हर वक्त उसकी हाक में रहता हूँ, जहाँ घोर जैसे मिले मैं उसे प्राप्त कर लेता हूँ। पर बहुधा मुझे वह खरीदनी पड़ती है। खरीदने के लिए रुपया बहुत प्राय-व्यक्त घोर कीमती चीज है, इसलिए मैं रुपये को बहुत प्यार करता हूँ। घोर उसकी प्राप्ति का कोई अवसर नहीं खुरता हूँ। हाँ, यह उधर देख लेना है कि कोई खतरा या उलझन न सामने आ जाए। अपनी श्रुतियाँ खरीदने के लिए मैं रुपये सेता हूँ। यदि उसमें खुशी ही खतरे में पड़ जाए तो मैं उस रुपये को छूता नहीं हूँ। इस प्रकार रुपये-वैसे का खेन-देन मैं पूरी सावधानी घोर समझदारी से करता हूँ।

घभी मैं जवान हूँ और मर्द हूँ। तन्दुरुस्त हूँ। तबियत भी रखता हूँ। घोर बुद्धि भी। भाकिस में बहुत बुद्धि खर्च करनी पड़ती है। उसमें मुझे कुछ भी सुरफ हानिल नहीं होता। पर वह मौकरी है। उससे रुपया भी मिलता है, इवजत भी है। उसीसे तयाज में मेरा एक स्थान है। मैं मृत्यतिष्ठित हूँ, इसीसे बहा ह्याड तोड़कर परिश्रम भी करता हूँ, बुद्धि भी खर्च करता हूँ। पर सबकी सब नहीं। बुद्धि का एक भाग अपने लिए बचाकर रखता हूँ, उसे मैं अपनी शृशो खरीदने में खर्च करता हूँ।

घोरत मर्द की सबसे बड़ी शृशो का माध्यम है। एक तन्दुरुस्त जवान मर्द के लिए घोरत एक पुष्टिकर आहार है—शारीरिक भी, मान-सिक् भी। मर्द यदि घोरत को ठीक-ठीक अपने में हजम कर लेता है तो फिर उसका जीवन आनन्द घोर सौन्दर्य से भर जाता है; उसका जीवन हरा-भरा रहता है। उसके मन के हीसखे बढ़ जाते हैं घोर शरीर में शक्ति का ज्वार आ जाता है। इसीसे घोरत की मेरी नजर में बहुत कीमत है। मैं उसे मर्द की सबसे बड़कर दोषत समझता हूँ, घोर अपनी पमन्द की घोरत को खरीद लेने का कोई मौका खुकता नहीं हूँ। कीमत चुकाने में कजुतो करता नहीं हूँ। पर मुश्किल यह है कि खच्छी घोरत

मिलना मुश्किल है। विवाह के बौद्ध ने धौरत को चकनाचूर कर
 ा है। मेरा सम्बन्ध विवाहिन धौरतों से भी है, अविवाहितों से
 है। जो विवाहिना हैं वे विवाह से परेशान हैं। जो अविवाहिना हैं
 विवाह के लिए परेशान हैं। विवाह जैसे धौरत के लिए एक मजबूरी
 गई है। विवाह होने में धौरत की सार्थकता है—ऐसा मत्र मानने
 पर मैं तो यह देखना हूँ कि विवाह होने ही धौरत मत्म हो जाती है।
 प लीप, ब्यास कर महिलाएँ नाराज हो जाएँगी मेरी बात सुनकर—पर
 ती खुली राय है कि विवाह होने पर धौरत गयी हो जाती है। विवाह
 के ही पहले उसे पति का, फिर उसकी दुस्खी का और उसके बाद उस-
 बच्चों का बौद्ध होने में ही अपना सब जिन्दगी खत्म कर देनी पडती
 । इसी काम में उसकी समूची शारीरिक और मानसिक शक्ति लचई
 जाती है। वह किनो काम की चीज नहीं रह जाती। उसका मत्र
 गडू खत्म हो जाता है। और वह एक दयनीय जानवर की भाँति अपना
 प्य जीवन व्यतीत करनी है, जहा उसका भाना नहीं कुछ नहीं होना :
 वह पति नामधारी एक स्वेच्छाधारी व्यक्ति की दुम बन जाती है।
 पाई-रती अपना समूचा रम, शृंगार-प्राकर्षण और जाडू वह उसीके
 चारों ओर बखेरेले-बखेरेले सोसनी हो जाती है। और तब प्राय देगिए,
 वह दुनिया की सबसे ज्यादा भद्दी और निरम्मी चीज रह जाती है कि
 जिसके मर जाने का अफसोस एक पालतू जानवर से अधिक नहीं होना।
 बडी कडवी और घटपटी लग रही हूँगी मेरी ये बातें आपकी। पर यह
 मेरी निजी राय है। मेरे अपने विचार हैं। तथा जरूरी है कि आप इनने
 सहमत हों, इन्हें पसन्द करें? पन्खा तो यही है कि आप इन्हें पके ही नहीं।

रेखा की बात कहता हूँ। वह एक धौरत है, साँसें में एक। छर-
 हरा बदन, उल्लूकना शीबन, प्यासी साँसें, धौरतान को उतावले होठ।
 चमरा की कली के समान कमनीय उंगलिया, एडी तक लटकती घुघराती
 लट्टे, चाँदी-सा उज्ज्वल माथा। धनार की पंक्ति के समान दात और
 चाँदी-सा हास्य। शाह, इसे नहने हैं धौरत, जिसे देखने ही घासों में
 नशा छा जाता है। अभी तक मैंने उसे छुसा नहीं, पर फूलों के डेर के
 यह कोमल है। जब वह बोलती है, रनक-मुनक पुँघरु बत्र उठते
 । बात-बान में उसका बेहुरा रंगीन हो जाता है। साँसें थमकने

रानी है। प्यार का एक भरना है जो उमकी हर घटा में भर रहा है, उसे देखे बिना बँने रहा जा सकता है भला ? घोर उसे देखकर फिर घोर जिसे देखने की मन हो सकता है।

दत्त मेरा दोस्त है, पुराना दोस्त। भला सादसी है, पर इनमें क्या ? क्या इमीमें वह रेखा बँनी घोरत का पति होने योग्य माना जा सकता है ? रेखा ने उमका इयाह हुषा है। दूसरे गल्लों में, रेखा की उम-के मा-बाप ने दत्त की पगभून की खेब में डाल दिया है। वह एक समाज की भांति उमका इस्तेफाल करता है; जब-जब मुँह का पसीना सूख-गाई पोष लेता है। उसे पाकर रेखा की क्या गिन सकता है भला ?

दत्त मोह की भांति तन्दुरुस्त है, प्रतिभिडन घोर विचारशील है। चापद रेखा को प्यार भी करता है। सबसे ऊपर वह उमका विवाहित पति है। पर इमीमें क्या वह रेखा का सब कुछ हो गया ? कच्छा मान लिया कि वह रेखा को प्यार करता है, पर क्या वह भी माना जा सकता है कि वह रेखा के प्यार का घानन्द भी लेने की योग्यता रखता है ? मैंने ऐसे कुछ पति देखे हैं जो अपनी पत्नियों को बोडा-बहुन प्यार करते हैं, पर घात्र नक रेखा एक भी पति नहीं देता जो अपनी पत्नी के प्यार का पूरा घानन्द ले सकता हो। इन मूठ पतियों को, जो अपनी पत्नियों को अपनी बिन्दा दोनन समझते हैं और इकाइय से परी में दबोच रखते हैं, भला घोरत का प्यार कैसे मिल सकता है ? उन्हें तो घोरत की खोज घोर विरक्ति ही पस्ने पड़ेगी। सभी जगह मैंने यही देखा है।

रेखा के प्यार का घादि-मन्य नहीं है। पर वह उसे संजोए किमी-को घांण करने के लिए उरमुक खड़ी है। वह समझती है कि दत्त—उसका पति ही उमका हकदार है। यह उमकी अपनी समझ नहीं है, उस समाज की परम्परागत समझ है जिसमें वह पसी है; वह चाहती है कि एक बार उसका वह पति उमके प्यार पर नडर डाले घोर वह उसे उसपर न्योछावर करके अपनी नारी-जीवन धन्य करे। पर दत्त को उम घोर देखने की सभी फुर्मत ही नहीं मिली है। यह मैं घात्र पाच साल में देखना पना घा रहा हूँ। चापद प्यार की परत ही उसे नहीं है। वह एक बेल है जो अपने घाफिस में जुटा रहता है। रेखा उसकी पत्नी है, उसके पर ही बहारदीवारी में सुरक्षित है—उसका शरीर उमके लिए रिजर्व

है, बस, उसके लिए यही काफी है। वह गवा यह नहीं जानता कि रेखा पत्नी ही नहीं एक प्रीत भी है। पत्नी और प्रीत में क्या अन्तर है, इसे शायद समझने का शक्ति भी दत्त को नहीं है। प्रीत की भूमि भी उम गवे में नहीं है। मैंने तो नहीं गुना, कभी कहीं उमने किसी प्रीत को पसन्द किया हो, घाल उठाकर देखा हो, प्रीत में पानन्द की अनुभूति की हो। अपने माफिस में वह एक परिचयी साड है, और घर में एक मूर्ख प्रभावशाली पति। फिर रेखा उममें मृग कैसे रह सकती है ! कब तक वह अपने छहडा-भरे पाप को लिए बैठी रहेगी, इस प्रतीक्षा में कि वह उसकी ओर देखे और वह उसे उमको समर्पित करे। पर वह कर भी क्या सकती है ? मैंने उसे रोने देखा है। कैसे माफमोय की बात है ! वे प्यार में लजालक भावों माफियों से तर हो, पुम्बन के कमिलायी होंठ धृष्टा में सिद्धुड जाएं। उमंगों में भरा हृषा दिख बैठ जाए ! और इसी उम में। मई, मैं तो हमेशा से यही कहता रहा हूं कि यह विवाह जैसी नामुराद चीज दिनों को मसौल जानने के लिए ही है। इससे किस दिन में कुछ पाया !

पाच साल हो गए, पर आज तक रेखा ने मेरी ओर घाल नहीं उठाई थी, जिसका मैं इन्तजार सदैव करता रहा हूं। बहुत प्रीतों के प्यार का पानन्द मैंने प्राप्त किया, पर इनकी प्रतीक्षा किमोकी न करनी पडी। मैं जब उमने भाभी कहता — तो उसके जवाब में जो कुछ उसकी माथों में पाना चाहता, नहीं पाना था। आज पाच साल बाद मेरी वह भमि-सापा पूरी हुई। आज उसकी माथों में मैंने वह चीज देखी जिसकी मुझे प्रतीक्षा थी। सब तो रेखा मेरी ही है। सोफ, कितने पानन्द की बात है ! मृनी से मेरे मृन की एक-एक बूड नाच रही है !

मैं भी पीना हूं, पर दत्त की भाति गधा बनकर नहीं। रेखा के लिए वह मूर्ख साराब नहीं छोड सका। सब रेखा मई उसके हाथ में। सोम समझने है, विवाह करने ही प्रीत या मई हमारे हाथ में। पर मैं जानता हूं—मैं से एक भी पति प्रीत को पाना नहीं सका। सामाजिक बचन बहुत पुराने हैं, बहुत मजबूत हैं। उन्होंने प्रीत को पत्नी बनाकर, पति के माय मृग कमकर बांध दिया है। छूट नहीं सकती वह उममें। पर इसमें कुछ साम छोडे ही हुआ ! वह गले का हार न होकर तिल ही

मई, जो गले में बांधी है, और जिसका असाध्य भार पति को जिन्दगी-भर उठाना ही होगा। इसीसे लोग पृथ्वी की एक ज्वाल कहते हैं। उसमें फंसकर छटपटाते हैं, या मूँड मुड़ाकर भाग खड़े होते हैं। पाप, ये औरत को पहचान पाते, औरत का प्यार पा सकते, और जिन्दगी का लुत्क उठाते !

समाज ने औरत के तन को ही विवाह-बन्धन में बांधा, मन को नहीं। पर ऐसा बाधा कि कसाइयों को भी मात कर दिया। धर्म कहकर धर्म की हद्द कर दी। मुर्दे के साथ जिन्दा औरत को फूक दिया। सतान्दियों तक फूकते रहे, और उसे सती कहकर सराहते रहे। पर इमसे क्या औरत का मन जोता गया ? औरत, जो दुनिया की एक नियामत है, जिसकी हस्ती से दुनिया रंगीन बन जाती है—एक जाने-बखाल बन गई। कितने महात्माओं ने औरत को विष की बेल कहा, उसे त्याग देने की सलाह दी, कितने सन्तों ने दूरी-सम्पर्क की एक पाप बताया; परन्तु अफसोस, उस सचाई को कोई न परख सका जो प्रकृति ने हमारे सामने रख दी थी। हमने औरत को अपने समाज की छाती का पत्थर बनाकर रखा, उसे आदमी के गले का हार न बना सके।

कहते हैं, श्रीकृष्ण की सोलह हजार रानिया थीं। पर वे सब धनेली राधा को न पा सकीं। राधा सबसे ऊपर सबसे प्राये रही—कृष्ण से भी ऊपर। कौन थी वह राधा ? कृष्ण की पत्नी नहीं थी। कृष्ण उसके पति न थे, सखा थे; और राधा थी सखी। यह सख्य-भाव कितना पनपा ! कृष्ण ने राधा का प्यार पाने के लिए अपनी धारें राधा के तलुओं में बिछा दीं; देहि में किरसि पदपह्लबमुदारम्। कौन पति अपनी पत्नी के तलुओं में धारें बिछाता है ! कौन उसके चरणों में नतमस्तक हो उसके महाचरंजित चरण अपने मस्तक पर रख देने की उससे प्रार्थना करना है ? यह पत्नियों की जमात गर्भों की जमात है। ये पत्नियों की अपनी बाल-रोटी की भाँति खाते रहते हैं—जब तक कि वह मर-मिट नहीं जाती। औरत का प्यार तो शायद ही किसी पति को मिलता होगा। मैं भी माया का पति हूँ। प्य से नहीं—साईस बरस से। पर मैंने उसका प्यार पाया, यह मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। शायद नहीं पाया। मेरा पति होना ही इसमें सबसे अधिक बाधक हुआ। अपने पति-

पने की ऐंठ में मैंने कभी उसे आत्मसमर्पण नहीं किया और मन की न खुलने से वह भी मुझे आत्मसमर्पण न कर सकी। अब वह मेरे बा ही नहीं रही। कितना भगडा-टंटा हुआ, कनह हुई, पर बात बनी नहीं—बिगड़ती खली गई। हफ्तों अब मेरी उसमे बोनचाल बन्द है। दूसरो को देखकर उसकी चारणी में जो मृदुता और होंडों पर घाती है वह मुझे देखने ही वर्षा की गुप की भांति गायब हो जाती है। मैं जानता हूँ, प्यार उसके पास बहुत है। वह एक दिलदार औरत नाग कि वह मेरी पत्नी न होकर सखा होती, तो जीवन का सुक भी उठाली और मैं भी। पर अभिमान और संदेह की एक दीवार, हम दोनों के बीच बन गई है, उससे वह अपना प्यार सडक पर तो बहा है पर मुझे नहीं देती।

मैं जानता हूँ—प्यार का भी मूल्य चुकाया जाना है। वह समझ है कि मैं उसने प्यार का मूल्य नहीं चुका सकता। उसका ऐसा समझ चलन भी नहीं है। इसके बीच में बहुत-सी बातें हैं। कुछ कहने के योग नहीं है, पर एक बात तो है। सब पत्नियों की भांति मैं समझता हूँ एक बार पत्नी के रूप में उसे पहण करने पर मैंने उसके समूचे प्यार मूल्य एडवांस में ही चुका दिया है। अब तो वह प्यार मेरी ही सप है। इसीपर उसका विद्रोह है। मैं समझता हूँ, विद्रोह ठीक ही है—स पति तो यही समझते हैं। औरत भी समझ जाती है—मेरा यह पत्नी का बिक चुका; अब इसपर मेरा अधिकार ही नहीं रहा। परन्तु विक का दाम तो नगद कुछ मिला नहीं, इसीपर वह विद्रोह करती है—उसे प्यार घुरा-घुराकर घोरों को बेचती है, और उसका जो दाम मिल है, कम माँ ब्यादा, उसीसे अपना काम चला लेती है।

एक बात मैं और कहूँ, जिसे मैंने बड़े ही परिश्रम से जाना है औरत को अपने-आपमे बहुत कम प्यार होता है। वह अपने को व्य करती ही नहीं, यह उसका दुर्भाग्य है। इसीसे वह बात-बात पर ज देने पर उताव हो जाती है। बहुत-सी तो जान दे ही देती है। अपने प्यार करनेवाली औरतें विरल ही मिलती हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा सामाजिक स्थिति सब ऐसी है जो उन्हें अनि छुड़हटि बनाए रखती है। वे न जीवन के टीक-टोक महत्व को समझ पाती हैं, न जीवन के सप

मानन्द का उन्हें भोग प्राप्त होता है । पाप । धीरत को विवाह-अन्धन
मे जकड़कर उसे परकैव न कर दिया होता । वह बसकर पति की दुम के
साथ न बाँधी गई होती । रंगीन नितली की मानि वह मधु-सोनुष भौरों
के साथ बेवचन रखान करती, जीवन का मानन्द लेती और देती । देवी
नाम सापेक करती ।

रेखा

मेरे विवाह से पहले ही से राय की दत्त से मित्रता है। सदा खुश रहते हैं। जहां तक मैं जानती हूँ, वे दत्त के सबसे अन्तरंग मित्र हैं। इसीसे प्रारम्भ से ही मैंने उनका एक भाति सत्कार किया। वे भी मुझे 'भाभी' कहते रहे। यह शब्द रिझता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाभी में देव हिस्सा रहता है। पत्नियां पति से भीत-शक्ति रहती हैं, नहीं। वे निस्संकोच देवों पर अपनी फरमाइशें जडनी रहतीं। खुशी में उनकी पूति करते हैं। पति वह गडरिया है, जो का भेड की भाति पत्नी को हाकला है। यह केवल शासन करता भावना प्रकट नहीं करता। पत्नी पर शासन करना उसका अधिकार है। उसकी कामचेष्टा भी मुर्गे के समान है जो एक बाकात्कार ही है। वह कबूतर की भाति कबूतरी की मूत्र करता। स्त्री प्रेम की भूत्री है और उसकी यह भूष वित्त इसपर पति कभी विचार नहीं करता। पति पत्नी पर नाराज है, जवाब भी तलब करता है, अनुशासन भी रखता है। प अनुशासन रखता है, न नाराज होता है, केवल हंसकर भाभी अधिलापार्ण पूर्ण करता है। यह भाभी सम्बोधन भी कितना फिर वह किमी गुन्दर, सम्य और भायुक्ततरण के मुख में मुन और भी मोटा हो जाना है।

गम लक्ष्म नहीं है। मेरे पति में उनकी उस कृप अधिक है। के अनुवार वे मुझे भाभी कहने का अधिकार नहीं रखते। पर लिए भाभी ही का रिझना उन्होंने जोरा है—और दस भाभी की निमाने के लिए उन्होंने दत्त को बरा भाई मान लिया है।

दत्त उनसे उम्र में छोटे हैं । दत्त को इस नये रिश्ते से कुछ भी आपत्ति नहीं हुई । जब उन्होंने ब्याह के बाद मुझे देखकर भाभी कहा था तो दत्त ने हँसकर कहा था, 'घब्र्रा रिश्ता जोदा तुमने राय, इसमें घब्र्रा मुभीना रहेपा । रेखा तुमसे घब्र्री तरह बातचीत कर सकेगी । लेकिन अब मुझे भी तुम्हारे पान मसने वा अधिकार प्राप्त हो गया है ।'

दोनों बिच इसपर खूब हँसे थे । पाँच साल तक वे बराबर हमारे ार घाते रहे । इस बीच उन्होंने कोई घमर्यादित भेषटा भेरे समदा नहीं ि । पर उनकी भाँशो में कभी-कभी एक ऐसी चमक अवश्य दीखती थी कि उसे देखकर मेरी घाँसों भँप जाती थी । भेरे हृदय पर एक घकका-सा लगता था घोर में वहाँ खड़ी नहीं रह सकती थी । पर वह चमक, वह हृष्टि बड़ी धाकर्क थी, बड़ी प्रभावशाली थी । मैं उससे डरती थी पर जब वे घाते, मैं उसी चमक को एक वार फिर उनकी घाँसों में देखने की अभिलाषा रखनी रही थी । घोर फिर मुझमें उसे घास-भर देखते रहने की हिम्मत भी हो गई ।

कभी-कभी वे माया के साथ घाते थे, परन्तु बहुधा घरेले । ऐसा भी हुआ कि वे रात को घाए, दत्त उस समय घर पर न थे । वे बड़ी देर तक बैठे रहे । गपशप करते रहे । बातचीत उनकी बड़ी दिलचस्व होती थी । उनकी बातें मुनकर तबियन ऊवती नहीं थी । कभी-कभी तो दिल में गुदगुदी होती थी । खास कर तब, जब बीच-बीच में वही चमक उनकी घाँसों में दीख पड़ती थी । अब ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते थे घोर हमारा परिचय पुराना होता जाता था, उस चमक के साथ एक हास्य उनके हँठों पर घोर एक याचना उनकी हृष्टि में प्रकट होने लगी थी । मैं नहीं कह सकती कि उस हास्य घोर याचना को देखकर मन में जो सिहरन उत्पन्न होती थी, वह कैसी थी—पर उसका इतना प्रभाव तो स्पष्ट ही था कि उसे बारम्बार देखने को मन होता था । जब घज्ञात ही मैं उनके घाने पर अपने शरीर घोर कपडों को व्यवस्था वा ध्यान करने लगी । न जाने किन घज्ञात शक्तिसे मुझ उनके घाने का पता लग जाता था—घोर मैं अपने बास बनाने घोर साडियों का धुनाव करने लगती थी । घोर उस दिन उनके पानवें बर्यडे पर, जब दत्त वो गैरहाजिरी के कारण मैं मन-मलिन बैठी थी घोर मैंने दिन-भर के परिश्रम के बाद

जाने तक नहीं बढ़ने थे, जब उन्होंने मुझसे वासना बनाने और सादी बदलने का अनुरोध किया। यह अनुरोध कोरा अनुरोध ही न था, उनके साथ वही चमक उनकी छांवों में थी, परन्तु उन चमक के साथ उनके होंठों पर वह अनुगामी हास्य न था—न दृष्टि में वह याचना थी। प्रतिशु, उसके स्थान पर एक तीव्र गिणासा थी, जिसे देखने पर मैं संयत न रह सकी। एक घामुरी तीव्र वासना का ज्वार जैसे मेरे खून में उमड़ छाया। और मैंने उन क्षण ऐसे चाव से शृंगार किया कि जैसा आज तक अपने जीवन में नहीं किया था।

दत्त से विवाह हुए सब मुझे पांच साल बीत चुके थे, उनके लिए न जाने मैंने कितने शृंगार किए, और उन्होंने काव्यमयी भाषा में उन्हें न जाने कितने बार सराहा; परन्तु उन सब शृंगारों में और इसमें अन्तर था। उन सबमें संकोच था, लज्जा थी, यतिकवित् निरानन्द भी था, पर यह शृंगार मेरी उद्दाम वासना का शृंगार था। यह उद्दाम वासना उस एक ही क्षण में न जाने कहाँ से मेरे मन में झा बसी थी। मुझे ऐसा प्रतीत ही रहा था कि जैसे मुझे बुझार चढ़ा है; और अब नया शृंगार करके मैं उनके बिनकुल निकट, दत्तनी कि जितनी आज तक कभी न गई थी, जा पड़ी हुई तो मैंने देखा—उनकी छांवों की वह प्यास भी चमक एक द्विज पशु की चमक में बदल चुकी थी। उसने दण्ड-भर मुझसे एक नशे का झालम पैदा कर दिया। मुझे ऐसा प्रतीत होने लग कि जैसे यह भादमी अभी-अभी मुझे निगल जाएगा। और मैं भी जाने किस भाव में अभिभूत होकर मन ही मन कह उठी—लो निगल जाओ, जा जाओ, जो भी चाहे सो करो। उस समय उनका वक्ष में वक्ष से सट रहा था और उनके दिन की फडकन मुझे ऐसी लग रही थीं जैसे हृदयों लीपें दनदना रही हों। और मैं अनुभव कर रही थी कि उन्होंने मुझे भरने से समेट लिया है।

दत्तने ही में दत्त मा गए। वे नते में थे, पर आज अनेकानृत होकर हवास में थे। राय के सामने भी और उनके जाने के बाद भी उन्होंने मुझसे प्रेमालाप किया; पर उससे मुझे खरा भी सुनी न हुई, खरा मैं मेरे मन में उल्लाह न जगा। काश, वे बेहोशी की हालत में होते। और राय ? फोक मैं क्या कहने जा रही हूँ ! मेरी खबरान टूट क्यों नई

जानी ! !... मैं मिट्टी के एक लोथड़े की भांति उनके घंक में पड़ी रही, रात-भर । उनका संरुपाण मुझे ऐसा लग रहा था जैसे किसीने मुझे ज़ज़ीरो में बस लिया है, घोर जैसे मेरा दम धुट रहा है । रात में यदि दस्त धुत न होने तो मेरी उस विरक्ति को वे घबराय ही भांप जाते । परन्तु उस दिन तो वे कुछ प्रायश्चित्त-सा कर रहे थे, अनुताप-सा कर रहे थे । प्रेम भी जाता रहे थे, पर वे सब बातें, उनकी वे सब चेष्टाएँ मुझे भ्रमसाह-सी लग रही थी । घोर में झूठमूठ सोने का बहाना बनाकर राय की उन घाँसों की प्यास का नज़ारा देख रही थी, उसका सुरफ उठा रही थी ।

मुबह जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मैंने इस बार किसीको निमन्त्रित ही नहीं किया तो वे बहुत विगड़े । मैंने भी मुंहतांड जवाब दिया । सौंडी नहीं हूँ । भोज खरीदकर नहीं साई गई हूँ । अर्थाचार कब तक सहूँ ? अन्याय भी हो घोर डांट-फटकार भी ! चोरी भी घोर सीनाडोरी भी ! नहीं, मैं बदरिण नहीं करूंगी, मैंने यह ठान ली ।

बचू न करती हूँ, दस्त का प्यार बोधा प्यार नहीं, सचवा प्यार है । मैं स्वीकार करती हूँ—वे सचमुच मुझे प्यार करते हैं । मैं यह भी कह सकती हूँ कि इधर-उधर दूसरी औरतों की लाक-भाक करने की उनकी प्रायत नहीं है । उनमें यदि कोई दोष है तो यही कि वे शराब पीते हैं, मात्रा से अधिक, और रात को देर तक घर से गैरहाज़िर रहते हैं; मुझे घनेली उनकी प्रतीक्षा में घाँसें बिछाए बैठा रहना पड़ता है । बड़वा मुझे रोना भी पड़ा था, और उससे मेरा मन उनके विरहद विवृष्ट्या से भर गया था । और उनके लिए मेरे मन में प्यार भी खरम हो गया, एक बूद भी न रहा, यह मैंने उसी दिन जाना ।

उसके दूसरे ही दिन राय भाए । सभी विराग नहीं जले थे और दस्त के घाने का सभी समय नहीं हुआ था । मैं सोके पर पड़ी लडप रही थी । मेरे रक्त की प्रत्येक बूद में राय ऊबम मचा रहे थे । राय और दस्त दोनों की मानस-सूत्रिया जैसे मुझे पाने को इन्द्र कर रही थीं—मैं दस्त को पीछे धकेल रही थी और राय में समाती जा रही थी । कमरे में पधेरा था कोई मौकर-बाकर वहा न था । राय भाए, झपटते हुए—जैसे चीता घाना है निरशब्द, और उन्हीने झपटकर मुझे अपने संरुपाण

के समान विना कोर वाजपत युवक पर युवक केरे हुँओं पर, बल्लभ
 त्त, बल्लभों कोर बल्लभों पर अतो धाराध कर दिव । बुद्धे देना बल
 कि र कोर बल के — दुग-दुग के, आक अम्बाल्लों के वि दन बल्लभ
 को बुद्धेना बल र कोर । वि लल देगे दुग में लो लई कि विदना को
 लीनन के लीन बल्लभ पर धनुषन गरी विदना वा । विने लेन बल्लभ कोर
 कोर लीन बल्लभ बल्लभ कोर विदना ।

.

दत्त

यह हो क्या गया है रेखा को ? फूल के समान कोमल उसका धालि-
 गन लफटी के समान सरल हो गया है । वह कुछ खोई-खोई-सी रहती
 है । उसके नेत्रों में भी एक विभिन्नता देखता हूँ । अब वह मुझसे भावों
 मिलाकर बात नहीं कर सकती; जैसे उसे मेरी धोर देखने का चाव ही
 नहीं रहा हो । सिर्फ नपे-नुले शब्द बोलती है धीरे-धीरे कहते-बहते जैसे
 कुछ भूल जाती है, घबरा जाती है, चौंक पड़ती है । कभी-कभी अकस्मात्
 ही बच की एक झलक चितवन में उसके नेत्रों में देखता हूँ, जैसे अचानक
 क्रिमी भयानक घटना को देखकर उत्पन्न हो जाया करती है । मैं तो
 अब कभी उसके साथ सरल बात भी नहीं करता, यत्नपूर्वक उसे प्रसन्न
 रखने की चेष्टा करता हूँ । फिर भी वह मुझे देखकर डर क्यों जाती है ?
 पहले तो ऐसा नहीं होता था—मुझे देखते ही उसकी धालि कमल के
 समान खिल जाती थी; अब मैंने कुर्नी-बुस्ती धा जाती थी, होंठ अधिक
 लाल हो उठते थे, कभी-कभी तो फड़कने-से लगते थे । ऐसा प्रतीत
 होता था, चुम्बन का निमग्नण दे रहे हैं । तब तो मैं उसकी धोर से
 अभावधान ही था—इस प्रकार मानो मेरी कीमतों धरोहर, भारी रकम
 हिफाजत से मेरे धर मे रखी है, उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता
 नहीं है । इसके बाद ही मैंने अपने अन्वयाचारण पर भी विचार किया ।
 कबूल करता हूँ, यह शराब ही मेरे-उसके बीच बाधा बनी । मैं समय
 पर धर नहीं धाता था । मैंने कभी इस धीचिन्त्य पर ध्यान नहीं दिया ।
 पर अब तो मैं बहुत ध्यान रखता हूँ । उसे प्रसन्न रखने के सब सम्भव
 उपाय करता हूँ; पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे-जैसे मैं उसे बटोरता हूँ,
 वह दिसरती है, बेकाबू होती जाती है ।

क्या उसे कोई दुःख है ? बहुत बार मैंने पूछा है, पर सदैव उसने

कहा— 'नहीं' । पर उमका घर नहीं' बिजना ठंडा है कित्ना धारा के गुनने ही मेरा हृदय ठंडा हो जाता है । बटुया जो वह जगाव देती ही नहीं । उम की हठ नेट्टा मे मुझे तेगा प्रतीत होता है कि मेरी उरध्वनि पर उमे उनकी त्रिय नहीं प्रतीत होती । कभी-कभी जो समझ-भी मरने है । क्या बात है यह ? इमकी जद भी कुछ समझ है । क्या उमका मन प्रद्युम्न मे लगा है ? तबि मे अधिक क्या पुत्र पर उमका प्रेम केन्द्रित हुआ है ? यह तो मेरी ईर्ष्या का विषय नहीं होना चाहिये । पर नहीं, नहीं, ऐसी बात भी नहीं है । प्रद्युम्न को लेकर पठने वह त्रिय उमा मे मेरे निकट धानी थी, पर कहां धानी है । वह जो जैसे घर मुझे देख-कर छुई-मुई-सी गिरुव जाती है, जैसे वह मेरी कलनी नहीं, कोई बंद भौरत है । देर मे घर मे जाने पर पठने वह गुम्गा करनी थी, कभी भौर धौर कभी कहती-सुनती भी थी । उमका गुम्गा मुझे बगल्ला सरवा था, उसमें उसके घट-टे प्रेम का पुट था । पर घर तो वह कुछ भी नहीं कहनी; जैसे मेरे घर में जाने-जाने मे उमका कोई वाक्ता हो नहीं रहा । उस दिन मैंने उमसे पूछा कि क्या वह बीमार है, तो इमका भी उम्मे वही ठंडा जवाब दे दिया, 'नहीं।' देव रहा हू कि मुझमें उमकी दिन-चरपी नम हो रही है ।

राय के नाम से वह धौरनी है, स्थिर नहीं रह सकती । प्रणव छिड़ते ही चल देती है । क्या बात है यह ? राय ते क्या उमे विड है ? बेचारा भला घादमी है, सुनामिबाज है, मेरा पुराना दोस्त है । वह सदैव मुझे धौर उमे भी प्रसन्न करने की चेष्टा करता रहता है । उमने क्या रेखा को नाराज कर दिया है ? ऐसा घादमी तो बड है नहीं । इमका वह धाता भी कम है, धौर जब धाता है, प्रद्युम्न के माथ खेनता रहता है । खूब घुटती है प्रद्युम्न से उसकी । परन्तु इममे तो रेखा के नाराज होने की कोई बात ही नहीं है ।

कई दिन से मैं मन ही मन घुट रहा था । मैंने धाज धान लिया था, धाज भूसकर बात करूंगा । धासिर मैं उमका पति हू, उमके मूण्डु को मुझे ही - - - लेनी चाहिए । धौर मैंने उससे कहा, "रेखा, क्या बात है ?"

"... ?" एक धौकी हंसी हंसकर उमने

कहा और घालें नीची कर लीं।

मैंने कहा, "सबमुच तुम यह रेखा नहीं हो, बहुत बदल गई हो। बताओ क्या बात है, क्या तुम मुझसे नाराज हो?"

"नहीं।" इतना कहकर वह जाने लगी। मैंने रोककर कहा, 'ठहरो!' तो वह मुंह फेरकर चुपचाप खड़ी हो गई, जैसे सबमुच कोई पर-रभी हो। क्या यह वही रेखा है जो बात-बात में हसती थी, हमले-हंसते जिनके गाल में गड़े पड़ जाते थे, जो बात में बात निकालती थी! जब किसी बात पर ज़िद करती थी, गले में दोनों हाथ डालकर मूल जाती थी और जरा-से अनुग्रह पर तड़ातड़ झुम्बन करने लगती थी। 'तुम बहुत ही अच्छे हो,' उमका यह वाक्य कितने गहरे निश्वास से निश्चलता था। पर अब क्या? अब तो वे सब बातें हवा हो गईं। तब उसकी याद-मात्र करके रंगों में लहू गर्म हो जाता था। दपतर के काम में यथावट ही नहीं प्रतीत होती थी। जब घर लौटने का समय होता था तो खून की एक-एक बूंद नाचने लगती थी—किन्तु अब तो धवसाद ही धवसाद है—ठप्पा और बासी।

मैंने उठकर उसे निकट बुलाया, गोद में बिठाकर प्यार किया। बहुत कहा, बहुत कहा, "दिल की धान कहो, दिल की घुण्टी सोखो, क्या हुआ है तुम्हें? क्या तकलीफ है तुम्हें? क्या चाहती हो तुम?" किन्तु सबका जवाब वही—'कुछ नहीं', उसी प्रकार मुंह फेरकर। भोंक, कितनी ठप्पी थी वह 'कुछ नहीं'! जैसे छुरी की नोक हो। गुस्सा था गया मुझे। मन हुआ कि फेंक दू उठाकर। शायद वह भी मेरे मन की बात जान गई और घाड़िस्ता से मेरे धकपास से निनलकर चुपचाप बैठ गई, उसी भाँति मुंह फेरकर!

मैं बिना ही साए-पिण् घाफिस चला गया। मैं कौने बर्दाश्त करूँ यह अब? घामिर मेरा दोष भी तो हो। मैं तो रेखा को दिल से प्यार करता हूँ। मैं इस बात पर गर्व भी कर सकता हूँ कि मेरे जैसा प्यार अपनी पत्नी को सब कोई नहीं कर सकते। बेशक मैं कुछ लापरवाह धवरम हूँ। पर हम पति-पत्नी हैं। दिखावे की हम लोगों को क्या जरूरत है? क्या हम अब अपने प्यार को भी नाप-सोलकर देते-लेते रहें? मानना हूँ—मैं झिंक करता हूँ। पर यह मेरी पुरानी घादत है। वह इमे नहीं पसन्द

फिर भी उसमें नुकस है, मैं स्वीकार करता हूँ। कभी-कभी समादती ही ही जाती है और मैं 'ओवर डोज' ही जाता हूँ। पर इससे मैंने आज तक किसीका कोई नुपसान नहीं किया। विदेय में मैंने देखा है, राग को पीकर एकदम बदनहवास पति को लेकर जब उसके दोस्त उसके घर पहुंचते हैं, तो उसकी पत्नी उसे महज एक विनोद ही समझती है। वह पति के मिश्रों का हंसकर स्वागत करती है। और घबिक से घबिक एकाघ उलाहना देकर पति को छुट्टी दे देती है। दूसरे दिन उनके नये प्यार का, नये खानन्द का दिन होता है। मैंने तो नहीं देखा, कहीं कोई पत्नी केवल ट्रिक को लेकर ही महाभारत खडा कर दे। रेखा को मैं प्यार व्यवध करता हूँ, पर मैं उसकी गुलामी तो मर्दासत नहीं कर सकता। यह रेखा की क्यावती है, फिर भी अब तो मैं उससे डरने ही लगता। उसी दिन की बात लो, दोस्तों का भी बुरा बना, सोसाइटी में पवार कहलाया और सबको छोड़कर भाग गया। सो यह बेहकी उसीका मतीया है।

उस दिन मेरा बर्बडे था। दोस्तों ने घेर लिया। मुझे उन्हें एक काकटेल-पार्टी देनी पडी। सदैव से देता रहा हूँ, पर इन बार मैंने निवचय कर लिया था कि अल्द घर सौटूंगा, और दोस्तों के मना करने पर भी मैं सबको छोड़-छाड़कर लिसक गया। बडो भडी बात थी। मैं मेडवान था, मेरा बर्बडे था और मैं ही उन्हें छोड़कर भाग गया। निपन्त्रितों में केवल दोस्त ही न थे, मुझे उंचे प्रोहदे के व्यक्ति भी थे। मुझे उनमें तविमल खराब होने का बहाना करना पडा। मन को बहान बुरा लग रहा था, पर रेखा का ख्याल था। इस बार घर पर भी मेहमानों की साव-भगन करमा में चाहता था; पर पर जाकर देखा—सब सामग्री जैती की तैती रखी है, घर पर मेहमान कोई नहीं है। अपनेसे राय थे लेकिन कुछ परेशान-से, चवराए-से। और दूसरे दिन मुबह जब मुझे ज्ञान हुआ कि रेखा ने इन बार किसीकी निमन्त्रित ही नहीं किया था, तो मैं धपने को काबु न रख सका—बरस पडा। किन्तु भली-बुरी जो बात थी खाम हुई; पर रेखा उसी दिन से बदल गई है। उसके सब रंग-उग कुछ के कुछ हो गए हैं। मैंने ही मनाया है उसे। अगर अब वह एक निर्जीव गुडिया-सी हो गई है जिसमें चाबी भरने से उसके हाथ-पैर तो चलते हैं पर प्राण उसमें नहीं है।

माया

राय मे मैने मवमैरिज की थी—घरने माना-पिता की स्वीकृति और राजामन्दी के बिहद । पिताजी चाहते थे, किसी घन्डे-भले घर में मुझे पुसेडकर अपनी दिग्भेदारी में मुक्त हो जाएं । भले घर से मनचब उनकी नजर में था जहां परिवार में मधुमन्त्री के छने के समान बेशुमार औरत-मई और बच्चे भरे हुए हों, लूब कराया हो और गानदार मकान-कोठी हो, मोटर हो । जहां गहद भी टपकता हो और मन्विया भी डंक मारती हों । एक हम रहा हो, एक रो रहा हो; एक गुमगुम हो, एक बमवार रहा हो; एक मर रहा हो, एक जगम ले रहा हो । इसे वे कहते थे भरा-पूरा परिवार । पर मुझे इस मधुमन्त्री के छने की एक मवली बनना स्वीकार न था । दुनिया मैंने देखी तो न थी, पर कुछ कुछ समझी थी । जब मैं एम० ए० में पढ रही थी, तभी मेरी एक सहोनी का ब्याह ऐसे ही भरे-पूरे घर में हो गया था । वह बड़ी मचली लडकी थी, निहायत खुनमिजाज । विनोदी स्वभाव और बालमुलम मरलता की मूर्ति थी — सुन्दर भी थी और प्रतिभा-सम्पन्न भी थी । बी० ए० में वह प्रथम और मैं द्वितीय भाई थी । ब्याह के समय वह बहुत खुश थी । डूल्हा उसे पसन्द था । सभी हाल में विलायत से डाक्टरेट लेकर आया था । सांबला-सलौना, बटीला जवान था । हादिरजवाब और मम्प-शिष्ट, चीन-राफ से दुस्तन । डूल्हा मुझे भी पसन्द आ गया था और मैंने ऐसा डूल्हा मिलने के लिए सखी की बघाई भी दी थी । पर ब्याह ने छ महीने बाद जब वह समुराल से सीटकर भाई तो उसके रग-अंग सब बदले हुए थे । वह मुक्त, उदास और जीवन से उबलाई हुई-सी, कुछ खोई हुई-सी हो रही थी । उसका वह उन्मुक्त हास्य, दिन घोलकर उरसाह से बातचीत का डग, मव गायब हो चुका था । मैंने कहा, "यह

क्या हुआ ? सभी जवानी लो चढ़ी ही नहीं, घोर बुढ़िया हो गई ।
 उसने बहुत रोका धरने मन जो, गर फूट पड़ी । अपने उन भरे-पूरे घ.
 का बरतान फिरा जो बसतू, रियाँ, हों घोर घताग्नि का चहहा बना
 हुआ था । जहाँ व्यक्ति की कोई मर्यादा न थी । जहाँ प्रत्येक रसाभी था,
 प्रत्येक घसंतुष्ट था, प्रत्येक लक्ष्महस्त था । उसने अपनी त्रिटात्रिणी की
 करतूतें बनाई, जो उसके रूप की रियाँ से घोर लक्ष्म-शिष्ट रहन-गहन
 को कोष से देखती थी । उसके बनाव-निवार यत्रा तक कि पाक-गुधरे
 कपडे पहनने नव की वे वेदयावृत्ति बहनी थी । वे उसी एकाग्रचिन्ता
 का मञ्जाक उद्यानी । उसे यमही घोर छोटे घर की बहकर निरस्तार
 करती थी । साम थी, त्रिनके सामने सब बहुरं या तो पापनू विस्मिपी
 थी, या बकूतरी । उन्हें निकले दरजे में बैठकर गुटरगु करने की स्वतन्त्रता
 थी । साम के तिर से पके बाल उसाइना घोरउनकी मुसाहिबपीरी
 करना उनका प्रधान कार्यक्रम था । मोकर-बाकर घोरी करते । बहुरं
 फूडह हंग से थोडो की बर्दादी करती । बच्चे यवाम दर्जे के त्रिहा ।
 बच्चों की लेकर दिन से दन घार गू-गू मी-मी होंगी । पति घर में न रहने
 थे । दूर भोकरी पर थे । साम ने बहू को उनके साथ भेजने में इन्कार
 कर दिया था । बडो कठिनाई में वह पिता के साथ था पाई थी । उसके
 समुर ने ली हज्जतें की थी—'घाय बयों से जाने हैं ? घापने भ्याह कर
 दिया, सुट्टी हुई । सपानी लड़की घाने घर ही भसी है ।' तीर-तमके भी
 चला दिए समुर ने—'दान-दद्रेत्र कम दिया था । कंगलों जैसा भ्यवहार
 था ।' घोर भी बहुउ-सी बाने । बेचारी मेरी सखी का पिता बहुत
 क्षमामानित होकर किसी तरह पन्द्रह दिन के लिए बेटी को घर लाया
 था ।

मेरा हृदय न जाने कैसी विनृपणा में भर गया उसकी बानों की
 सुनकर । परन्तु दूतरी बार डेड बरस बाद जब वह अपने ए' मान के
 बालक को मोद में लेकर भाई तक ली उसका रहा-सहा पानी भी उतर
 गया था । उसकी घाँसों के चारों घोर स्पाही फेल गई थी । घायों में
 घब तेज लो था ही नहीं । जिसके एक हास्य में ली विजलिया लक्ष्मणी
 थी, वह हास्य मर चुका था । बेहरा राल के समान हो गया था । उसे
 न घब घाने बरतों को संभालने की र्चि थी, न किसी बान में घाव था,

जैसे वह इती उस में जीवन में बेजार हो चुकी थी। उस बार तो वह अधिक बात भी नहीं करती थी, चुन रहती थी। बहुत पुराने पर चौकी हंगी हंगती थी घोर जब उसका मन बहुत ब्याकुल होता था तो अपने स गाल के बालन को दूसराकर दिन बहवाती थी। वही तो था ब्याह का मूल्य, जो उसे भिया—घणनी देह देकर घणमार, बलन घोर रिरासा। वी जितना सोनगी उनना ही मेरा मन बिडोह कर उठता। मैंने ठान लिया कि बिबाह करूंगी ही नहीं। किसीको मैं घणना घणमन प्यार भी बूँ घोर दागो बनूँ। भया क्या तुक है इसमें? अपने प्यार की कोमल में जान गई थी। कितने तरफा उसके एक कण के लिए सापायिन हो मेरी भुदुटी की घोर देतते थे उन दिनों! मैं सबको सपझनी की घोर दबित होती थी। कोरा प्यार ही नहीं, वरीर भी तो था मेरा, जिसका कोई मुहयघांका ही नहीं आ सकता था। मैं न तो अपने प्यार को सस्ता बेचना चाहती थी, न उसे घणान को किसी भी मूल्य पर देना चाहती थी। तो मेरा प्यार मेरे ही संभल में एकजिन होता गया, घोर उसने बोझ से मैं कराहने लगी। प्यार तो अब किसीको देना ही होता—देने ही से उसकी सार्धकता होगी—इस बात पर मैं जितना ही बिचार करती, ब्याकुल होती जाती थी। मूल्य-संगीत का मुझे बचपन से शौक है। बचपन में मेरे इसी शौक के कारण मेरा नाम सबसे रसा था 'राधा'। तब उस नाम का साहाय्य मैंने जाना नहीं था। अब जाना तो राधा नाम अरिज्ञार्थ करने को मर बिठी। कैसे कहूँ मैं अपने मन की घोर, घोर तभी मेरी नजर के नीचे पाए राध। जिन्दगी की एक सजीव मुनि, रस-भरा बलन। घांसी में क्या मद था कि क्या कहूँ! उन बातों को घाज बाईस वर्ष हो गए पर भूली नहीं हूँ, भूल सकती भी नहीं हूँ। घोर तभी मेरे मन में एक नई अनुभूति भी हुई। मैंने देखा, जैसे प्यार किसीको दे डालने को मैं मरी जा रही हूँ—जैसे ही प्यार को एक भूल भी मुझे मारे जान रही है। उसकी दीक्षा तो मैं बहुत दिन से घणताला में अनुभव करती रही थी, परन्तु घणम कारण जान न पाई थी। वह जब अब राध ने अकमान् ही अपने प्यार में मुझे सतायोर कर लेन के हिसाब-किताब रखने का मुझे होना नहीं रहा। देन-... बहुत, पर क्या दिना, क्या निदा—वह मैं नहीं जानती।

घोर जब होग घावा तो मैं उनही हों चुकी थी, घपवा के मरे ही चुके थे। फिर तो देन-लेन की होइ मग गई। वे जितना देने उतने बहुत-बहुत मुना भी देती। बदने में वे भी हुनना देते थे कि क्या नहू ! उनका प्यार मुझे अपने रग में समाबोर करना और मेरे प्यार में वे दुबलियाँ सपाने। उन दिनों किरव के सब फूल खिल रहे थे, सब तारे जगमगा रहे थे, सारी दुनिया हुन रही थी, सब फवेल हरे ही हरे थे, सब सरियाए बजबजल जितनाद बरनी जा रही थीं। दुनिया का सोन्दर्य दुनिया में बिखरा पड़ रहा था और हम दोनों—मैं और राय—एकमात्र उनके दर्शक और मासी थे।

एकमात्र ही कुछ घनहोनी-मी होनी प्रतीत हुई। मैंने भयभीत होकर देखा—मैं भरी हाथी जा रही हू। फिर मैंने अनुभव किया, कोई मेरे पेट के भीतर जा-ने बला रहा है। मेरा मन उदास रहने लगा। फालस्य और घपगाद मेरे मन में भर गया। मुझे न खाना पकड़ा लगना न माच-रग भागना था। मैं सब नाच नहीं सकनी थी। मेरा पेट बड़ रहा था। जिसमें बहनी बह मुह केतर हुन देना। राय से कहा तो उन्होंने उसे गुन ममाचार बनाया। मैं बर्बाद हों रही थी और दुनिया घानन्द मना रही थी। और फिर वह भवानक रान घाई—जब हजार-हजार बहियाँ मेरी घरेली जान पर बसीं। यह प्यार का मूल्य था। परन्तु मैं मुद्दिन हो गई। और जब होना मे घाई तो देखा—घान्दिरण-सी एक सखीव गुडिया मेरा स्तन चुम रही थी। बाहूरी प्रकृति ! बाहूरी बिदम्बना ! बाहूरे प्यार ! बाहूरी औरत ! बाहूरे मरने ! तेरे ये रग-इग ! ये जादू के खेल !

और मेरी बचनी बडी होने लगी। इसने बाद जब प्यार की जमा-पुत्री की मैंने सभासा तो कलेजा घक् हो गया। मेरा प्यार तो अब मेरे ही घांचल में पडा-पडा बाली हो रहा था और मुझे जो मिल रहा था वह प्यार न था—प्यार की ललछट थी, कडवी और घप्रिय। अपने प्यार का मूल्य तो मैंने ब्याह से पहले ही जान लिया था। अब मैंने उसे यान में अपने कलेजे में छिया लिया। राय को यदि उसकी भूष नहीं है तो क्या जरूरी है कि अबइंस्तो उन्हें ही दिया जाए ? परन्तु अब मेरी भूल मुझे बेचैन कर रही थी—वह बहुत भटक उठी थी। मुझे डेर-सा प्यार

हैं। घायद के ममी से दु राती हैं।

एक दिन मैंने उनसे कहा था, "देवी, घाय ममी से बोलते क्यों नहीं हैं ? उनके पास बैठते क्यों नहीं हैं ? पहले तो ऐसा नहीं था। जब घायका घायफिम मे घाने का वक्त होता था, तो ममी परेवान हो जाती थीं। स्वयं नाशला सगाती थीं। मुझसे तकाजा करके कपड़े बदलवाती थीं, घाय भी नई गाडी पहनती, बाल बनाती, और गुनगुनाती हुई बार-बार घडी की ओर देखती रहती थीं। हर मिनट पर कहती थी—'तेरे देहों ने घाय इतनी देर कर दी। घभी तक नहीं घाय।' पर अब तो ऐसा नहीं होता। सब कुछ नौकरों पर छोड़ दिया है उन्होंने। जैसे घायमे उनकी कोई दिलचस्पी ही नहीं रही है। घाय घाने हैं तो किसी बहाने से बहो निसक जाती हैं।"

हंसकर मेरी बाल गुनकर देवी ने मेरे भिर पर हाथ केरते हुए कहा, "तेरी बात ठीक है सीला। उनकी अब मुझमें दिलचस्पी नहीं रही। मैं पुराना हो गया। लेकिन तू तो मेरा बहुत कपाल रखती है, तू बडी पच्छी बेटो है।"

बस बात कहते-कहते उनकी हंसी नायब हो गई, और मैं देखती रह गई। मगर अब तो कुछ-कुछ मैं समझ रही हूँ। इन वर्षोंसाहब की बाल, देवी उनका घाना पनाब नहीं करते। फिर उन्हें घाने को मना क्यों नहीं कर देते ? न करें वे, मैं मना कर दूंगी। हम तीन घायमी घर में हैं। मैं हूँ, देवी हैं, ममी हैं। बस, चौथे की क्या जरूरत है ! नहीं, नहीं, बिलकुल जरूरत नहीं है, मैं घाय देवी से कहूंगी। सब बात कहूंगी।

कहा, "ममी, वे बर्मा साहब मुझे घण्टे नहीं मंगाने — इन्हें बंद कर
 घड़ी न घागा करें " तो कहने लगी, "तू कौन है, जो मुझपर हंस
 पावानी है। वे मेरे पाप का नहीं जाने, मेरे पाप जाने हैं; हमेंना पाएंगे।
 मैं उनसे विच्छिन्न एक सगद नहीं मुनना चाहती।" मैं भी सब बैठी। मैं
 कहा, "मुनना क्यों नहीं चाहती ? मैं ही उनके बड़ दुंभी कि न मना
 करें," तो हाथ छोड़ बैठी। उनका बिबाव ही बिगड़ गया है। वे
 चाहती हैं कि मैं होस्टल में जा रहूँ, घोर फिर पर में जन्हीरा रात्र ही
 जाए। क्यों रहूँ मना मैं होस्टल में ? जन्हीने डैडो को पट्टी पडाई थी।
 डैडो रात्री ही गए, मुझे होस्टल में भेजने के लिए। मगर मैंने इत्तार कर
 दिया। मैं नहीं आऊंगी — मैंने भी टाल ली।

डैडो सब बड़ी देर करके घर घाने हैं, पता नहीं कहाँ रहते हैं।
 ममी से वे लिने-लिने रहते हैं। पठने की तरह दिन खोलकर हमने-
 बोलने नहीं है। घोर कैसे बोलें ? ममी का तो उन्हें देखने ही मूड लगान
 हो जाता है, तथियन खराब हूँ जानी है। डैडो रात्र को देर तक टिक
 करने रहते हैं घोर फिर मो जाने हैं। पहले तो ऐसा नहीं होता था।

घर में कितना मूनारन घा गया। मैं न मन की बात ममी से कह
 सकती हूँ, न डैडो से। जब कहना चाहती हूँ तो ऐसा लगता है जैसे कोई
 पत्थर छाती पर धड गया है। घास्विर बाव क्या है ? किस बाव पर
 लडाई है ? वह कभी खत्म भी हांगी ? मुद्द हूई, डैडो ने मुझे गिबनर
 नहीं दिखाई। उस दिन मैंने कहा तो उदासी में बोले, "ममी के मात्र
 बली जाना।" ममी भला मुझे साथ क्यों ले जाने लगी ? वे तो जाएगी
 बर्मा साहब के साथ।

डैडो मुझे प्यार करने हैं। वे अच्छे भादमी हैं। बहुत अच्छे हैं।
 मन की बात मैं उनसे कह सकती हूँ, मेरी निमी बात को वे नहीं टालने।
 वे सदा प्रसन्न रहते हैं। पर पहले जैसे देर-देर तक मेरे साथ हांगते थे,
 अब नहीं हांसने हैं। बस जरा-सा मुस्काकर रह जाने हैं। घास्विर का
 काम बहुत बढ़ गया है ; बहुत देर में घातें हैं, पर फिर बने जाने हैं।
 पूछनी हूँ — 'डैडो, अब घाप मरे साथ ताश नहीं खेलते, बातें नहीं करते।'
 — तो जरा-सा हसकर कुछ बहाना कर देते हैं। बहाने की बातें मैं सम-
 झती हूँ, अच्छी तरह समझती हूँ। कुछ बाव है उनके दिल में, जो छिपाने

उस मुझसे ज्यादा है। वह बर्तन बरतों से राय की पत्नी है, जबकि मैं अभी तक कुंवारा हूँ। वह खालीत मे ऊपर की घातु को पहुंष चुकी है, और अभी मैं केवल खलीत बा ही हूँ। फिर भी मेरा मन उसे देखकर उमपर धारणित हो गया। और मैंने देखा, माया ने इसे जान लिया। और वह नाराज नहीं हुई, सदप हुई। राय को मेरे ऊपर सन्देह तक नहीं हुआ। और हम दोनों—मैं और माया—को सम्बन्ध-मज्ञात ही एक-दूसरे को और धारणित होते बसे गए। परन्तु प्रेम की भाषा मैं नहीं जानता, प्रेम के तरण और प्रेम के पन को भी शायद नहीं जानता। धारणित धारण्य हो सकता है—मेरी उम्र के धारणित को धारणित धारण्य कहा जाता है। तो मेरा यह प्रेम सम्बन्धी मज्ञान सम्बन्धी हाम्यास्पद है। परन्तु मैं एक दरिद्र परिवार का सदस्य हूँ। जिसे लोग गदहूप्सीसी कहते हैं, वह उम्र तो मेरे जीवन-मरण में पित्त गई। पिता स्वर्गवासी हो गए। माता, दो भाई और दो कुंवारी बहिनों का सिर पर बोझ लेकर मैं अपनी कच्ची घातु में ही बिना ही गृहस्थ बने गृहस्थ बन गया। मेरी सारी भावुकता पेट की बिन्ता में खर्च हो गई, और उभरता हुआ जीवन भोजन के बोझ से ककनाचुर हो गया। जीवन की रानीनियों से मैं बंचित ही रहा। बिनास और ऐश्वर्य तो दूर, जीवन में सतोप और तृप्ति के दर्शन भी नहीं हुए—केवल भूख ही को मैंने जाना-पहचाना और अपनी जवानी धारणित कर दी।

वेसक मैं कहता हूँ—मैंने अपनी भूख को अपनी जवानी धारणित कर दी, और अब मर्दागि मैं केवल खलीत ही बरस का हूँ, उस जवानी की उमर में अपने भीतर नहीं देख रहा। धारणित भी तो मैं भूख से लड रहा हूँ। बहिनो की चादो हो गई। एकमात्र पैतृक मकान रहन हो गया। एक भाई अभी पड रहा है, दूसरे को नोकरी मिली है, पर अभी वह किसीको सहायता देन के योग्य नहीं है। जितना कमाता हूँ, सब खर्च हो जाता है। और भूख बँसी ही कायम है।

धासिर यह भूख क्या बला है! हमपर मैंने बहुत बार विचार किया है। तन की भूख पर भी और मन की भूख पर भी। कम्युनिस्ट लोग कहते हैं, दुनिया के सब लडाई-भगड़े तन की भूख के कारण हैं।

वर्मा

मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे मैं ज़िगी बट्टान से टकरा गया हूँ। माया घोरत है मगर बट्टान की तरह मरुत घोर अविषल। मैं मर्द हूँ, मगर छुई-मुई के पेड़ की भांति मंकोव घोर मिमक मे मरा हुआ। राय मेरे अफसर हैं, घोर मैं उन्हींके धाकिम का एक कर्मचारी हूँ। अब यदि मैं मुस्लाममुस्ला माया से धपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता हूँ, तो सम्भवतः मेरी नौकरी नहीं रहेगी। राय मुझे कभी नहीं दर्शन। वो वे एक खुश-अखलाक अफसर हैं। पर कोई किना ही खुश-अखलाक हो, धपनी पानों के जार को सहन नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ, राय का चरित्र हड़ नहीं है। अनेक लटकियों से उनके सम्पर्क हैं। उनके संबंध में मैं बहुत-भी कहानियाँ सुन चुका हूँ। भाकिम के चपरासी से हैड तक उनकी रगीन कहानियाँ कहते-सुनते हैं पर उनसे किसीको कोई शिकायत नहीं, सब उनसे खुश हैं। वे जैसे खुश-अखलाक हैं वैसे ही उदार भी हैं। कितनी बार वे अपने मातहून लोगों का पक्ष लेकर ऊपर के अफसरों से भिड गए हैं। बेशक वे सीधे-सादे भादमी नहीं हैं। पर सीधा होना कोई अन्धी बात थोड़े ही है ! बेचारी गायें, जिनके सिरो पर लम्बे घोर पैंने सींग होते हैं, वेवल अपनी सिघाई के कारण ही बसाई की छुरी का शिकार बनती हैं। उनपर वे सींगों का प्रहार नहीं करतीं। राय न स्वयं सीधेपन को पसन्द करते हैं न किसीकी सिघाई की तारीफ करते हैं।

माया से मेरी मुलाकात छः महीने से है। राय की मुकार सास कृपा रहती है। उन्होंने मुझे कठिनाइयों से उबारा है। मैं तो महा तक कह सकता हूँ कि वे मुझसे प्रेम भी करते हैं। इसीसे उनके घर मेरा पाना-आना आरम्भ हुआ। माया से परिचय हुआ। मैं नहीं जानता क्यों। पहली ही नज़र में मैंने माया को पसन्द कर लिया। उसकी

मैंने विज्ञान की शिक्षा पाई है। मैं जानता हूँ कि हमारे शरीर का निर्माण करने की शक्ति हमारे रक्त-सेलों में है। जैसी छोटी-छोटी इंटों से मकान बनाए जाते हैं, उसी प्रकार सेलों से शरीर बना है। और रक्त-प्रवाह के साथ जीवन-शक्ति सारे शरीर को मिलती है। परन्तु यह प्रवाह काम-वापना पर निर्भर है। काम-वापना हमारे शरीर में एक प्राण जलाती है, उसने तपे हुए गुनाही गानो को देखकर हमें प्रसन्नता और उत्तेजना हीनी है; क्योंकि इससे रक्त की उत्तमता का सम्बन्ध है। शिश्नः ही हमारा रक्त उत्तेजित होगा, उतना ही हमारा स्वास्थ्य उत्तम होगा; और रक्त की उत्तेजना का उत्तम प्रकार कामोत्तेजना ही है।

मानवीय विकास का इतिहास काम-विकास से प्रारम्भ होता है; बच्चे काम-वासना के विकास से रहित होते हैं। यह उनका सौभाग्य ही है। उनके कोमल नन्हे शरीर और सुकोमल हृदय भला काम के प्रचां वेग को कैसे सह सकते थे!

प्राणी-शास्त्र विचारकों ने कहा है कि प्रेम का उदय विचार में होता है। परन्तु प्रेम पर सपन रहने की आवश्यकता पर भी उन्होंने विचार किया है। शरीर एक महत्वपूर्ण यंत्र है, उससे उतना ही काम लिया जाना ठीक है जितने की शक्ति उतने है। प्रेमोत्तेजना में यदि शरीर की शक्ति ने बाहर काम किया जाएगा तो निश्चय ही उस पर परिणाम अनिष्टकारक होगा। जब प्रेम के साथ कामोदय होता है; रश्मि में और नाडियों में एक तीव्र उत्तेजना का अनुभव होता है घं घानन्द की अनुभूति में प्रेम मिलकर एक मानसिक काम बन जाता है; अत्यन्त आह्लादजनक होता है। वह जब युवा पुरुष में, जो स्वस्थ भी पूर्ण आधेग में होता है तो प्रेम के पर उग घाने हैं और उने जीवन नहीं का कहीं से उडते हैं।

ऐसा ही मैंने अपने जीवन में देखा। मैंने कहा था कि मैं स्वस्थ युवा था। और जब-जब मेरे अंग में कामोत्तेजना होती थी, दबाव तथा रक्त के प्रवाह में घन्नर पड जाता था, वह मैं अनुभव क था। और मैं तड़के जब मैं उठना या तो ऐसा प्रतीत होता था कि शरीर साथ गारी ही इन्द्रियां जाग उठी हैं। मैं देखता था कि तनिक सोचं

स्वास्थ्य और प्रविष्टा के लिए लड़ने की पीड़ थी। तब इस काम-वानु को दमन करने का क्या मार्ग हो सकता था? इस निर्दय शत्रु का हलान्त स्त्री थी, जो मुझे प्राप्त न थी। कभी-कभी प्रकृति सहायता करती थी, पर वह कपेट न थी। इस दुर्दम्य काम-वीर को दान्त करने के लिए एक घातक साधनी की आवश्यकता थी, जो इस ध्यान-प्रदान में बराबरी की प्रतिस्पर्धा करे और जिसे मैं अपने-घातको सोच दूँ, जो न केवल ध्यान की शक्ति भीभाष्य की भी बात थी।

परन्तु मुझे ऐसा साधनी नहीं मिला। और मेरे जीवन की दुपहरी इस नठिन काम-संशाम में लड़ते-लड़ते ही कटी। मेरी इस जीवन की कठिनाई और दयनीयता का कोई वहाँ तक अनुमान लगा सकता है भला!

मैंने ब्रह्मचर्य और संयम की चर्चा की है। दोनों का ही मैंने सहारा लिया पर लाभ कुछ न हुआ। यह कहना कि ब्रह्मचर्य से किसी हालत में कोई हानि नहीं है, सरासर अज्ञानिक है। मैंने तो देखा कि ब्रह्मचर्य के पालन में बेहद शारीरिक शक्ति खर्च हुई और उससे तात्पर्य के उत्साह का वेग ही रुक गया, और मैं सदा के लिए म्लान और निरस्त हो गया।

यह एक बड़ा ही बेचीदा सवाल है, जो मेरे जैसे लाखों-करोड़ों तस्मों के सामने आता है कि अविवाहित व्यक्ति को कामेच्छा होने पर उसकी पूर्ति किस प्रकार करनी चाहिए! यह सवाल पारोम्य-विधान की दृष्टि से मैं कर रहा हूँ। क्या वह स्वसंभोग करे जो हानिकारक है, या वैश्यागमन करे जो कतरनाक है, या परस्त्रीगमन करे जो अनैतिक है? वह यदि समाज-बंधन और नीति-बंधन में बंधने की परवाह नहीं करता तब तो कोई दिक्कत ही नहीं है। मैंने इस सम्बन्ध में चिकित्सकों से राय ली और उन्होंने स्पष्ट कहा कि वह किसी भी स्त्री से सहवास करे। मैंने जब नीति की बात कही, तो उन्होंने कहा—चिकित्सक नीति का रक्षक नहीं है, स्वास्थ्य का रक्षक है। मैंने चाहा कि वे कोई ऐसी सामक घोषण दें कि जिससे मेरी बढ़की हुई वासना शमित हो जाए—परन्तु उन्होंने निश्चित रूप से मुझे सचेत कर दिया कि यदि मैं ऐसी कोई घोषण देने की मूर्खता करूँगा तो न केवल काम-वासना, प्रत्युत शरीर

मतिष्क में रक्ताभिमरण भर जाना था । रक्तभिसरण जीवन में कितना बहुमूल्य है, इसे सब लोग नहीं जानते । और भी एक बात है जिसे सब लोग नहीं जानते । त्रिदनी अधिक मस्तिष्क की बड़ी शक्ति होगी, उतनी ही उत्तेजना अधिक होगी । इसलिए कामोत्तेजना जीवन के सब कामों से अधिक महत्वपूर्ण है । यह त्रिदनी ही अधिक होगी, उतना ही मस्तिष्क विकसित होगा । मनुष्य अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए, जो न केवल उसके व्यक्तित्व में सीमित है अणिबु ब्रह्माण्ड-भर में विस्तृत है, मस्तिष्क से बहुत काम लेता है । इसीसे मनुष्य का मस्तिष्क संसार के सब प्राणियों से बड़ा होता है । परन्तु यह एक गभीर तथ्य है कि मस्तिष्क को आराम की जरूरत है, पेशियों को परिश्रम की । कामोत्तेजना, जो पुरुषत्व की प्रतीक शक्ति है, जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और आनन्दवर्धक वस्तु है ।

आप चाहे जो भी समझें, पर मैं जब अपने जीवन के सबसे नाबुर और महत्वपूर्ण लक्ष्यविदु पर था पहुँचा हूँ तो मन की सब गुप्त-शक्तियाँ प्रकट बरूँगी । एक ही शब्द में मैं कहना चाहता हूँ कि जब मैं आरि-भोग काम-वासना को शरीर में भड़का देखता था तो ऐसा अनुभव करता था कि जैसे संसार की बहुमूल्य शक्ति मैंने प्राप्त कर ली है ।

कोई कमजोर दिनवाला व्यक्ति उस वेग के धक्के को सह नहीं सकता था । मैं उसका निवारण नहीं कर सकता था । इतना ज्ञान मुझमें था कि मैं अस्वाभाविक आदेश से बचता गया । मुझे अपनी काम-वासना से प्रबल मुझ करना पड़ा । मैं अपनी ध्यान दूसरे कामों में बँटाना और रात-दिन काम में व्यस्त रहना, परन्तु काम-वासना अपने ही वेग से मेरे सम्मुख आ गयी होती ।

शारीरिक आवश्यकताएँ अनिवार्य हैं । यह वह संघर्ष है जिसमें बार-बार हमें पड़ना है । दिन-भर के काम से थकनाचूर शरीर लेकर जब रात को शय्या पर जाना तो, यद्यपि वह आराम का समय होता था, परन्तु मुझे उस एकान्त रात्रि में अपनी सारी शक्ति काम-वेग से मुझ करने में जुटानी पड़ती थी; यद्यपि यह मुझे थुरथुर करना पड़ता था और कभी-कभी विषम कठिनाई का साम्मुख्य भी होता था । कोई भी अस्वाभाविक चेष्टा निराल्प मूर्खतापूर्ण थी । और वेदपानमन

सारास्य घोर प्रतिष्ठा के लिए मरने की चीज थी। तब हम काम-धनु को हवन करने का क्या मानें हो सक्ता था ? हम निर्धन धनु का इलाज नहीं थी, जो मुझे प्राण न थी। सभी-कामी प्रकृति महाव्रता करनी थी, पर वह पचेष्ट न थी। हम दुर्लभ काम-नीला को प्राप्त करने के लिए एक साधन साधनी थी आकाशवाणी थी, जो हम आनन्द के आदान-प्रदान में बराबरी की प्रतिवर्षा करे और जिसे मैं माने-साधनी तोर हूँ, जो न केवल आनन्द को धानु भीमाय भी भी बात थी।

परन्तु मुझे देना साधनी नहीं मिला। घोर मेरे जीवन की दुहाही हम बहिन काम-संशय में सड़ने-नडाते ही बठी। मेरी इस जीवन की बहिनार्थ घोर हनीयता का कोई वहाँ तक अनुमान लगा सक्ता है भला !

मैंने बहिनार्थ घोर संयम की पर्चा की है। दोनों का हाँ मैंन सारास्य नियम पर लाभ कुछ न हुआ। यह बहना कि बहिनार्थ से किसी हालत में कोई हानि नहीं है, सरासर पर्वनामिक है। मैंने तो देखा कि बहिनार्थ के पानन में बेहद शारीरिक शक्ति सर्ष हुई और उससे शारथ्य के उत्सास का वेग ही रुक गया, और मैं सदा के लिए म्लान और निस्तेज हो गया।

यह एक बड़ा ही बेकीदा सवाल है, जो मेरे जैसे लाखों-करोड़ों सहायों के सामने आता है कि पवित्राहित व्यक्ति को कामेच्छा होने पर उमकी प्रति किस प्रकार करनी चाहिए ! यह सवाल शारथ्य-विधान की दृष्टि से मैं कर रहा हूँ। क्या वह स्वसभोग करे जो हानिकारक है, या वेदयागमन करे जो उत्तरनाक है, या परस्त्रीगमन करे जो धनीति करता तब तो कोई दिक्कत ही नहीं है। मैंने इस सम्बन्ध में चिकित्सकों से राय ली और उन्होंने स्पष्ट कहा कि वह किसी भी स्त्री से सहवास करे। मैंने जब नीति की बात कही, तो उन्होंने कहा—चिकित्सक नीति का रक्षक नहीं है, स्वास्थ्य का रक्षक है। मैंने चाहा कि वे कोई ऐसी सामक घोषण दें कि जिससे मेरी भङ्की हुई वासना शमित हो जाए—परन्तु उन्होंने निश्चित रूप से मुझे सचेत कर दिया कि यदि मैं ऐसी कोई घोषण देने की मूर्खता करूँगा तो न केवल काम-वासना, अपितु शरीर

की मरम्मत क्रियार्थ भी मन्द गड जालंगी घोर शोष्मानिशील बुडारम्बा मुझे धर दबागरी । यह शरीर के लिए एक लोगिम को खान है, घोर इन चीजों को लपानार लेने से शरीर की घोर मन की स्फूर्ति नष्ट हो जाती है । निरमदेह कुछ परिस्थितियाँ हैं जबकि मान-द्यः महीने के लिए घबरा जन्म-मर तक के लिए ब्रह्मचर्य रखना लाभदायक हो सकता है, पर वह काम-काम ज्ञानों में, काम-काम रोगियों के लिए, न कि पूर्ण स्वस्थ घोर वलवान लोगों के लिए काम नियम बन जाना चाहिए । घोर इनके निर्णय का अधिकार मीनि के उपदेशक एवं नर्मगुरुओं को नहीं है, प्रत्युत चिकित्सकों को है । स्वर्ग-प्राप्ति, मुक्ति के लिए या धर्म-लाभ के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता नहीं है, ब्रह्मचर्य की आवश्यकता स्वास्थ्य-लाभ के लिए है । श्रुत्य घोर काम-वासना दोनों का शरीर पर समान अधिकार है । कुछ मोग कुछ समय तक उबराम कर सकते हैं । इससे यह कहना कि मनुष्य के लिए भोजन की आवश्यकता ही नहीं है, मूर्खना है । सह्याय में शक्ति खर्च होती है यह ठीक है, पर काम-धन्या करने में, चलने-फिरने घोर परिश्रम करने—सभी में तो शक्ति खर्च होती है । पर उसकी पूर्ति शरीर स्वाभाविक रीति से कर लेता है । वीर्य का शरीर में एकत्रित करना सम्भव नहीं है, वह सारित्व होता है । तभी उसके बनने की क्रिया ठोक-ठीक होती रहती है । देशक काम-वासना की शक्ति का कुछ घंटा दूसरे कामों में भी खर्च किया जा सकता है, पर वह पूरे तौर पर दूसरे काम में नहीं सार्ई जा सकती है । न काम-वासना संतानोत्पत्ति के लिए है—वह तो एक विशेष सुख घोर जीवन की स्फूर्ति के लिए है ।

चिकित्सकों के इस निर्णय ने मेरे मन को झकझोर डाला घोर मैं एक जीवन-साथी की प्राप्ति के लिए छुट्टाटाने लगा । पर साथी को कैसे प्राप्ति करूँ, यही मेरे लिए समस्या बन गई । मैंने फ्रायड के मनो-विज्ञान का मनन किया । उनका अचेतन-सिद्धान्त बड़ा अद्भुत है । उनका कथन है कि मन के सब व्यापार हमें मामूली नहीं होते, घोर मन का एक निरुनि-प्रदेश होता है । यही निरुनि-प्रदेश हमारी कामनाओं की समष्टि है । निरुद्ध होने पर भी हमारी कामनाएं मन से सर्वथा दूर नहीं होतीं, प्रत्युत मन में धात्म-प्रकाश करने की चेष्टा करती हैं ।

जीवन में जो लंटी-लट्टी भूने होती है—उतने मूल में भी यही निरुद्ध
 समझना काम करनी है। हमारे मन में ऐसी घनेक कामनाएं होती हैं जो
 सामाजिक बन्धन तथा अनुजापन के कारण घबरा में नहीं आ पाती।
 जब हमारी बुद्धि जागृत होती है, तब हम उन्हें बनपूर्वक टालने
 पाते हैं; पर स्वप्नादस्था में जब बुद्धि एकर्मण्य बन जाती है, तो हमारी
 ये निरुद्ध कामनाएं स्वप्न में नाना प्रकार के रूप धारण करने प्रारम्भ
 प्रचालन करती हैं।

उन निरुद्ध कामनाओं में घनेक ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध काम-
 वागना से है। अनुपपन्न सामाजिक बन्धनों के कारण उन्हें निरुद्ध करना
 पड़ता है और ये रुद्ध कामनाएं घनेक उपायों से सृष्टि-लाभ करने की
 चेष्टा करती हैं, जिनके अन्तर्गत नाना मानसिक रोग हैं।

मेरे मन्दिर में जब वे उचित काम-गमस्याएं उत्पन्न रही थीं और
 मैं निरुद्ध ही मानव रोग की घोर घनेला जा रहा था, तभी माया मेरे
 सम्पर्क में आई। परन्तु मैंने माया को नहीं—माया ने मुझे घबनी घोर
 लौटा। मैं बहू भुजा हूँ, उगकी घापु मुझसे घषिक है। उगकी सामा-
 जिक स्थिति भी मुझसे ऊपर है। मेरे मन की लंटाएँ, भिन्नक, निरोध
 बहुत थे। पर प्रकृत भूष भी एक स्त्री के लिए घत्यन्त भयानक रूप से
 मुझे घीटिन कर रही थी। इन कारण माया की प्राप्ति मेरे जीवन की
 एक पूर्ति हो गई। मैंने घबने को माया के अर्पण कर दिया है—मन से
 भी घोर मन में भी। घोर घब मैं उसका बड़े से बड़ा मुख्य चुकाने पर
 घामादा हूँ। घब तो मेरा मुर्झाया हुआ घीवन फिर से हरा-भरा हो गया
 है।

माया ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया है। उस सम्बन्ध की सब
 प्रतिकूल-अनुकूल बातों पर हमने विचार कर लिया है और मैंने सब कुछ
 उनीपर छोड़ दिया है। वह एक होसलेमन्द घीरन है। घीर मैं घाना
 करता हूँ कि उसे पत्नी के रूप में प्राप्त कर मैं घबने घब तरु के प्रपूर्ण
 जीवन की पूर्णता को प्राप्त कर सूया।

बरमान, बुधवार बरगाही भी जाती है, यह बहुत बड़ा काम है। इसकी वही
 भी बहुत बड़ा काम भी — साबर एक भी जाती है। धातु तीन दिन
 हो गए, यह से बड़ा है, यह बरगाही हो रही है। साया उमने नहीं
 माना है। एक साबर भी उमने मानने बरमान से नहीं बड़ा है। बुधवार
 मे रही है, वन से नहीं है। जैसे बहुत लंबे बुधवारों की हुई बरनी हो और
 उमे बरनी बरगाही बरनी या घर गई हो। मुझे भी यह बड़ा काम भी
 है। उमने यह मुझे देखने ही पट पानी है। साबर यह समझती है कि
 उमने की बरह से साया बनी गई है।

यह उमने यह हथोकर मुमने बनी — मेरी सिरहाडिनी से बर्मा का
 पाग और बंदों का से लुकाण से रहना, साया का उमने साय पर से
 बरह जिसेवा के बहाने जाना और बनी गान कोने साबर के मने से पुन
 सौटना, केरी के रोच-रोच करके एक डाटना-कपटना, हाथ तर साबर
 बंदना — जो से बुधवार रह गया। बुधवार तो सब दाने गुनवर से उमने
 निमाण का संगुनन सो बंटा, और बुधवार भी क्लान बिजा कि बुधवार
 बरानन कर लो लो केरी क्या बनेगी। से साया से उमने बंटा। बुधवार
 बाउ नहीं कि से सब मामना जानना नहीं। बर्मा महोने गहने ही से बर्मा
 और उमने बरबेध साबरन को जान भाप गया था, पर मुझे उम हासन
 से क्या करना चाहिए था, वही सब न कर पाया था। बहुत बार मैने
 साया को समझना भी चाहा। पर मैं उसे नभीहन कैसे दे सकता था,
 जबकि यह जानना है कि मैं लुद उमने प्रति बपदादर नहीं हूँ। मिक
 एक रेखा ही की लो जान नहीं, और भी रिचियों से मेरे सम्बन्ध हैं। इस
 बाउ को छिपाने से क्या लाभ है? साबर साया से लो बुधवार दिगा
 नहीं है। रेखा की बाउ भी यह जान गई है। रेखा एक बपदादर औरन
 थी। परन्तु उमके ब्याह को लो सभी पांच ही बरत हुए थे। पांच बरत
 की बपदादी भया बर्मा बरत की बपदादी का क्या मुकाबला कर
 सकती है !

मैने धागसे क्या समी नहीं बड़ा था कि साया मेरे प्रति बर्मा बरत
 बपदादर रही। और बपदादर ही क्यों? बहना चाहिए एक सम्बन्धी
 जीवन-संगिनी। जिसमें प्रथम श्रीलुकी की सम्बन्धारी, विद्वानतावना,
 पारमस्थाप, साहस, हिम्मत और निष्ठा थी। इन सब बहुमूल्य मद्गुणों

किसी दिन उसे किन्तु उसने मेरे पीछे एक लम्बी छेद की जेब खोजी।
 किन्तु नहीं है। उस छेद को मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। किन्तु मैं उसे
 बंद करने में बेचैनी के पल का अनुभव करने लगी, उसी छेद को बंद करने का नाम था।
 दूसरे दिन उसी तंतु का कि मैं अपने केमिस्ट्री की लैब में जा कर आया हूँ।
 मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। बेचैनी थी।
 मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। "मैं
 लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।"

उस लम्बे तंतु के तंतु लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा देने का नाम
 था। किन्तु मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था।
 मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।
 मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था।

मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।
 मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।
 मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।
 मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।

"बेचैनी को किन्तु लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।
 मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।
 मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।
 मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा। मैं ही था। मैं लम्बे लम्बे तंतुओं से बंद करवा।

मैंने देखा—उनका चेहरा राख के समान मैला और धुंधला हो रहा है। वे एक मासूली साड़ी पहने थीं। और अपने सब खेबर, हाथ की घुड़ियां उगार दी थीं। मैं मनी से लिपट गई। बहुत बहा—‘ममी, मेरे पुनूर माफ कर दीजिए, मैं डैडी से अब कोई बात नहीं कहूंगी।—लेकिन उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। एक बार मेरे सिर पर प्यार से हाथ फेरकर, मुझे तीने से लगाकर वे चली गईं। वे चली गईं डैडी!’

इतना बहकर बेबी फिर दोनो हाथों से मुह टापकर रोने लगी। मैंने अपने मन में कहा—‘तब तो वह मां का दिल साप ले गई है। एक हनकी-सी माया को मलक मुझे दिखाई दी। मैंने सोचा—मेरे लिए न सही, बेबी के लिए वह सौट आएगी।

लेकिन तीन दिन बीत गए, वह नहीं आई। बेबी तीन दिन से रोती रही है। उसने कुछ भी नहीं खाया है। मेरा रुपाल या वह बर्मा के घर गई होंगी, पर पीछे पला लगा कि वह अपनी एक सहेली के घर पर है। मैंने एक पुर्जा लिखा, केवल दो शब्द—‘माया, बेबी पर इस बदर बेरहमी न करो। जब से तुम गई हो, वह न खाती है न पीती है, रो रही है।’

पुर्जा पढ़कर माया आई। सीधी बेबी के कमरे में गई। बेबी को गोद में लिया, बहलाया, उसे लिखाया-पिलाया। मैंने सब कुछ जाना-मुना। तबियत को नसल्ली दी—आखिर वह आ गई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं फिर से जी उठा। वह दिन-भर बेबी के पास रही। मुझे आशा थी कि रात को वह मेरे पास आएगी और तब किस तरह सुलह की जाएगी—मैं मन ही मन इन बातों पर विचार करने लगा। पर वह शाम को मुझसे बिना ही मिले चली गई। बेबी ने कहा—‘वह सुबह फिर आएगी। सुबह आई और दिन-भर बेबी के साथ रही। बेबी बहुत प्यारी थी। मैं भी खुश था, शाम को मैंने माफिस से सौटकर उसके साथ चाय पी। इसके बाद उसने मुझसे बात की।

बात छेहले ही मैंने सुलह के मूड में कहा :

‘‘मुझे बहुत परसोस है माया, उस दिन मैं गया बन गया, मैंने तुमसे बहुत सस्त कलामी की। मुझे तुम माफ कर दो।’’

उसने कहा, ‘‘दादी तुम उन बातों को बापस लेने को तैयार हो?’’

“रुका, रुका । मैं जानक से तो हूँ मुझे धरमोंच है ।”

“धरमोंच हा मरणा है दुष्टे, कनेरि तुम एक कोमल, चातुर
हृदय के धारणी हा पर तुम उन जानी को जानक सेने से मरणा हो ?”

“कनी मरी ने मरणा, बिन्दुवत वाशिरण पी से जाने !”

“वाशिरण ना भी, मरणा मर भी तो पी ?”

मैं । मरणा मर भाग न मुह की पीर देणा । पर जानक पीर मनीर
पी । उमने कहा

“उमने ना मुझारी भी है । पीर मैं जानकी हू, तुम उमने निर
करी से मरी मुझीना कर मरणा हा ।”

“लेकिन तुम्हारा मरणा क्या है ?”

“मरी कि तुम्हारी हा भाति मैं भी जानकी उमने ना बहुत ध्यान
रमानी हू । तुम मुझे पीर म मुह धरणी मरणा जानकी हू । उमने जानकी
पूरी मरानी बिन्दु-मुमकर एममाय एक होकर काटी है । पर न मैं मुझे
पीर न तुम मुझे सोचा दे मरणा हो । पर पीर भी न हीना ।”

“ना तुम...”

“हा, मैं पर कह रही हू कि पर हम पनि-पनी की मरि एममाय
नही रह मरने । हने मरणा हीना होणा ।”

“लेकिन माता, हम पनि-पनी की भाति रह सकने है । तुम जानकी
हो, मैं मुझे बिना प्यार करना हू ।”

“प्यार की बात ना मैं भी कुछ कह सकनी हू, पर उमने पर पर
मोका नहीं है । फिर यदि प्यार का कुछ उपयोग हो पात्र करना है तो
इस तरह करें कि हमारी बिना घट्ट बनी रहे । एक-दुसरे को मर
करके हम दिन से एक हीन का अनुभव करने रह ।”

“लेकिन हम पनि-पनी की भाति क्यो नहीं रह सकने ?”

“उम दिन तुमने मुम्मा किया तो मैं तुम्हारे निर किन्ती दुःखी
हुई । काय कि हमारे-तुम्हारे बीच कोई न भाग ! पर अब तो जेने मैं
तुम्हें जानती हू, तुम मुझे जानने हा । हम दोनों ही पर एक दुसरे के
मरणा मरणी रहे । मुझे संतोष मिर्क इतना ही है कि वेवधई की पहल
तुमने की । बहुत दिन से मैं जानती थी कि तुम्हारे मरणा मरनेक
मरणा मरणी से रहने रहे है । मैंने मन को बहुत समझया कि पात्रि तुम

मर्द हो, मैं घोरत हूँ। मर्द ऐसा प्रायः करते ही हैं। पर अन्त
 आत्म-सम्मान और निष्ठा जाग उठी, और मैंने तुमसे मांग की
 मेरे प्रति वफादार होकर रहना होगा। पर तुमने उसे हंसी में
 दिया। तुम्हारा ख्याल था कि पत्नी यदि पति से वफादारी की मा
 तो यह बहुत हलकी-सी, बल्कि सब प्रकार से हास्यास्पद-सी था
 पर मैं ऐसा नहीं मानती। मैं तो चाहती हूँ कि जैसे पत्नी पति से
 वफादार है, वैसे ही पति भी पत्नी के प्रति वफादार हो।”

“लेकिन माया, मैंने तुम्हें प्यार करने में कोई कभी नहीं की

“तुम हायद उस दुग की बातें सोचते हो, जब एक पति की
 स्त्रिया होती थी। वे सब उसके प्रति वफादार ही नहीं होती थीं
 प्रता भी होती थी। उनके लिए पतिव्रत-धर्म की बड़ी-बड़ी क
 बनाई गई। पतिव्रत-धर्म के बड़े-बड़े माहात्म्य गढ़े गए। बड़े-बड़े
 भाषों ने, समाज के निर्माताओं ने पतिव्रत के एक से एक बढकर
 नियम बनाए, जिनमें एक पति के मर जाने पर उसकी अनेक स्त्रि
 जिन्दा उसकी विदार्यों पर फूक दिया गया; और उन्हें सती
 लोकोत्तर पतिव्रता की डिग्री दी गई।.....”

“यह पतिव्रत-धर्म केवल स्त्रियों ही के लिए था, मर्दों के
 नहीं। मर्दों के लिए चाहे जितनी पत्नियाँ ब्याहने, बिना ब्याह
 चाहे जितनी दासियों, लौहियों, रक्षेत्रियों से सहवास करने ब
 थी। तिसरर भी उसके लिए बेश्यामों के बाजार थे, जहाँ श्ले-
 भोग-विलास का सौदा होता था।...”

“तब घोरत मर्द की दासी थी, मर्द उसका स्वामी था— इस
 में भी, परलोक में भी। समाज मर्दों का था, धन-सम्पत्ति, घर-ब
 नहीं स्वामी था, वह ज्ञानवान था, सामर्थ्यवान था। उसके लिए
 दुनिया थी। स्त्री तब उसके लिए उसके भोग की एक सामग्री थी
 समय स्त्रियाँ यह बर्दाश्त करती थीं कि उनका पति दूसरी स्त्रि
 सहवास करे और वे उसके ईर्ष्या न करें। ऐसे दास्य-वचन भी मै
 हैं, जहाँ सौतों में ईर्ष्या न करना भी पतिव्रत-धर्म का एक भाग
 गया है। जहाँ कौड़ी पति को कंधों पर लादकर बेश्या के यहाँ ले
 उसके सहवास की मुविधा करना पतिव्रता का धर्म माना गया

तुम क्या मुझसे भी धाज बढी धाजा करते हो ? कोई भी पुरुष धाज की स्त्री से यह धाजा कर सकता है ?”

“किन्तु माया, तुम तो...”

“ठहरो जरा, पहले मुझे ही अपनी बात कह सेने दो । एक और युग था—सामन्तो युग, जब पति पत्नी के माना-गिता-परिचर्यों को मौन के घाट उतारकर हरण करते थे और उन्हें उन पत्नियों की एकनिष्ठ पत्नी रहना पड़ता था । कैसे वे रहती थीं, उन्हें प्रेम करती थीं, हम धाजकन की स्त्रियां इन बातों की बहाना भी नहीं कर सकतीं । अब तो पत्नी पति की सहचारिणी है, उसकी जीवन-साथी है । सुख-दुःख में, हानि-लाभ में वे दोनों बराबर के भागीदार हैं । अब वे यह नहीं देख सकतीं कि पति तो दूसरी स्त्रियों से सहवास करता रहे, और पत्नी उसके प्रति एकनिष्ठ रहे । यदि पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसके लिए एकनिष्ठ रहे, बफादार रहे, तो उसे भी उसके प्रति बफादार एकनिष्ठ रहना होगा, भवदय रहना होगा । स्त्रिया अब न पुरुषों की गन्तति हैं, न भोग-मामग्यो, न दासी, न पतिव्रता । वे उनकी जीवन-साथी हैं, मित्र, और उनके व्यक्तित्व की पूरक हैं ।”

“खैर, तो अब तुमने क्या करना विचार है, माया ?”

“जो कुछ कि मुझे करना चाहिए था । तुम मर्द हो, तुमने प्यार को गौण बना दिया और विलास-वामना को प्रमुक्तता दी—इसीसे तुम धमर की भांति नई-नई कसौ का रक्षण करना पसन्द करते हो । मैं घोरन हूं, प्यार को बढी चीज समझती हूं । प्यार का मूल्य मुझे ज्ञात है । मैंने अपना प्यार उन पुरुष को दिया है जो मेरे प्रति एकनिष्ठ हैं, बफादार हैं । ऐसी हानि मैं हम पति-पत्नी की भांति नहीं रक साने । यदि ऐसा करने का हम बोंग रखें तो हम अपनी ही नजरों में गिर जाएं, पाने-पान ही मुख हो जाएं ।”

“माया, क्या तुम गिबे अपनी पुरानी जिन्दगी में नहीं सोच सकती ?”

“इसका उत्तर तो तुम्हीं बराना ठीक-ठीक दे सने हो । क्या तुम ऐसा कर सकते हो ? अपनी मैं कहती हूं कि मैं नहीं सोच सकती । मैं प्यार ने सिमबाड़ नहीं कर सकती, एक बार जिसे दिया—उसे दिया ।

जब तक वह वफादार है, उससे प्यार लौटा नहीं सकती ।”

“और यदि वह वफादार न निकले ?”

“तो प्यार का वह अधिकारी ही नहीं रहेगा ।”

“माया, मैं तुमसे एक संभार बात कहना चाहता हूँ ।”

“कहो !”

“मर्द औरत से कोरा प्यार ही नहीं चाहता । वह चाहता है प्यार के साथ उसका यौवन-सौन्दर्य, उसका जवानी से भरपूर शरीर । मर्द की वासना स्त्री के शरीर में है, पर स्त्री की वासना पुरुष की शक्ति में है । पुरुष बड़ी उम्र तक अपनी शक्ति कायम रख सकता है, पर स्त्री बड़ी उम्र तक अपने शरीर का यौवन और रूप का जादू कायम नहीं रख सकती । इससे स्त्री यदि प्यार के मामले में पुरुष से स्पर्धा करे तो निश्चय ही उसे चाटे में रहना होगा । उसमें सामर्थ्य है, उसके पास साधन है, वह नित नये यौवन सरोदेगा और उनका उन्मोग करेगा ; परन्तु यौवन बीत जाने पर स्त्रियाँ असहाय और निरीह रह जाएगी, उनका धाधध छिन जाएगा, उनका घर लुट जाएगा ।”

“यही भय दिखाकर मर्द चाहते हैं कि स्त्रियाँ उनके व्यभिचार को गहन करती रहें, और उनकी एकनिष्ठ बनी रहें । परन्तु तुम समाज के बदलते हुए संगठन को नहीं देख रहे । स्त्रियाँ अब जीवन-संग्राम में भी पुरुषों के साथ बराबरी की स्पर्धा करती हैं । स्त्रियाँ अब अपने प्यार की दुकान खोलकर ही बैठी नहीं रहेंगी—वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ रहेंगी । रही धाधु और यौवन की बात, तो धाधु के साथ ही साथ प्रेम का स्वरूप भी बदलता रहना है । स्त्रियाँ पत्नी ही नहीं हैं, माताएँ भी हैं, और तुम्हें जानना चाहिए कि पत्नी के प्यार की अपेक्षा माता का प्यार बहुत बड़ा है ।”

“माया, मैं समुभव करता हूँ कि मैंने तुम्हें शक्ति पहुंचाई है । तुम कहो, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ ?”

“तुम मुझपर बेवफाई का इलजाम लगाकर मुझे तलाक दे दो । मुझे उधर न होगा ।”

“न, न, ऐसा मैं नहीं कर सकता । यदि यही करना है तो तुम्हीं मुझे सम्पत्त करार देकर तलाक का दावा कर दो, मुझे उधर न होगा ।”

माया

तलाक़ मज़ूर हो गया और राय से मेरा सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। परन्तु पत्नी अपने परिवार में किस तरह घंसी हुई है, इस बात पर तो मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। हकीकत तो यह है कि चिमो स्त्री का पत्नी बनना एक ऐसी मानसिक दासता है जिसका भादि है न भन्त। सीप उसे मानाजिक दासता कहने हैं। पर मैं पहले मानसिक दासता की ही बात कहूँगी। अपने पति को—श्री राय को—मैंने तलाक़ दे दिया। बड़ी घासानी से उनसे मेरी ख़ोड-छुट्टी हो गई। अबन वे मेरे पति रहे, न मैं उनकी पत्नी। उन्होंने न मेरे काम में बाधा दी न मेरे विचारों में। काम कि वे मृत्यु तक मेरे पति रहते, मैं उनकी पौड़ी में सिर रखकर मरनी! वे एक प्रेमी, उदार और खुले मस्तिष्क के पति हैं। उनकी सोहबत में आनंद और स्थलम्नता दोनों ही हैं। बाईस वर्ष हम लोग दूध में मिश्री की भांति मिल-जुनकर एक होकर रहे। हम दो हैं, या कभी दो हो सकने हैं, यह कभी मैंने न विचारा था। परन्तु जैसे भूबाल घाने हैं, उसका टूटती है, प्रलय होती है, मृत्यु आती है, वैसे ही यह विच्छेद भी आ गया। यह अनिवार्य था—मेरी और उनकी, दोनों की प्रतिष्ठा और मर्मादा के लिए। कानून ने, समाज ने, बदले हुए दृष्टि-कोण ने मेरी सहायता की। बाईस वर्षों के संस्कारों पर भी मैंने काबू पा लिया। मैंने छाली पत्थर को बनाकर ही यह काम किया था। और अब हम प्रत्येक धर्म में पति-पत्नी नहीं रहे। परन्तु क्या बेबी भी अब मेरी बेटी न रही? यह बात तो न बह मानती है न मेरा मन मानता है। राय भी यह बात नहीं मानने। अब भी मैं बेबी की माँ हूँ, सच्ची माँ हूँ। कानून की कोई धारा, समाज का कोई नियम उससे मेरा विच्छेद नहीं करा सकता।

हो जाती हूँ। बहूतों को बेबी के समान प्रिय समझती हूँ। वे सब प्रब
 फूट गए। वे सब प्रब पराये हो गए। प्रब उन्हें देखकर मैं गर्व से मुखर
 नहीं सकती, उनपर अपनी ममता उठा नहीं सकती। बहूना चाहिए
 कि उन्हें देखकर प्रब शर्म से मुझे मुंह छिपा लेना पड़ेगा। सब नाते-
 दारियां प्रब खत्म हो गईं। क्यों भला ? किस कसूर पर ? उन्होंने मेरा
 क्या बिगाडा था ? तलाक तो मैंने राय को ही दिया। इसी एक धान से
 ये सब सम्बन्ध-बन्धन भी टूट गए। मेरी पुग की दुनिया उजड़ गई।
 परिवार की एक सदस्या थी मैं, उसके बीच जगमगा रही थी, प्रब
 उखड़कर धकेली रह गई। शोक, कितनी निराशाजनक, कितनी भयानक
 घात है !

लेकिन क्या भी क्या जा सकता है। बर्सा बहुत भले घादमी है।
 मुझे उन्हें देखते ही अपने जीवन के ये दिन याद आने लगते हैं जब मैं नई
 ब्याहकर राय के घर में आई थी। बर्सा जब मेरी वैसी ही सल्लो-चप्पो
 से धाकभगत करते हैं, बात-बात पर प्यार जताते हैं जैसे कभी राय
 जताते थे, तो प्रब मन में वही गुदगुदी नहीं होती। यह तो उठती हुई
 जवानी थी, प्यार का पहला दौर था। नया शरीर था, नई उमग थी,
 नया संसार था। जीवन की दुपहरी चढ़ रही थी। प्रब तो वह बात
 नहीं है। दुपहरी प्रब ढल रही है। प्रेम का तूफान तो कब का शान्त हो
 चुका। प्रब तो यह सब धोचलेबाजी मुझे हास्यास्पद-सी लगती है। प्रब
 तो मैं सोच रही थी कि एक प्रगाढ़विश्वास, आत्मीयता, गम्भीर एकता
 और शान्त दृढ़ता—यह सब क्या एक दिन मे मुझे मिल जाएगा ?
 कितना शप, कितना त्याग, कितना प्रेम और विश्वास मुझे खर्च करना
 पडा था लगातार बाईस वर्षों तक, तब कहीं ये दिव्य वस्तुएं मुझे प्राप्त
 हुई थीं ! राय से—राय के व्यक्तित्व से उन सब बातों का सीधा सम्बन्ध
 न था। उनका सम्बन्ध तो उस सम्बन्ध से था जो पति-पत्नी-सम्बन्ध
 जुड़ने पर अपने-आप ही जुट जाता है। यह था परिवार-सम्बन्ध, जहां
 मेरा एक गौरवपूर्ण स्थान था, जहां मैं केन्द्र में बैठी थी।

किन्तु प्रब ? बर्सा से अभी मेरा विवाह-सम्बन्ध नहीं हुआ। अभी
 इस काम में छः मास लग जाएंगे। लोक-मर्यादा ही कुछ ऐसी है। परन्तु
 इस समय का मेरा जीवन तो देशों, कक्षा विचित्र बन गया है ! बहने

को अब न राय मेरे पनि रहे, न बर्मा पनि है। दोनों दुनिया की नजर में मेरे मित्र है। पर दो भिन्न प्रकार के मित्र। एक बर्मा है, त्रिनमे मैं दुनिया की नजर खिनाकर मित्रता हूँ, मित्रता के सम्बन्ध को अनिर्वाण करने प्राये होनेवाले सम्बन्ध को घाटा और बरसे पर। दूसरे हैं राय, जो जीवन-भर अब तक मेरे प्रगाढ़ साथी रहे—और अब विभुद गए, त्रिनमे फिर मिलने को जी भटकता है, हृदय हुनकता है। पुगनी वार्ने याद आती है, रह-रहकर मन में टूक उठती है। पर कमकर मन को रोकती हूँ—उधर से मन फेरती हूँ, पर यह मैं ही जानती हूँ कि इन दोनों ही मित्रों से दो भिन्न व्यवहार—राय से मुह फेर लेना, त्रिनके साथ एक होकर जीवन बीना और दूसरे के निकट जाना, जो अभी मेरे लिए नये है, ठीक-ठीक जाने-सहजाने नहीं हैं—त्रिनता कठिन है, त्रिनता दुस्मह है !

अच्छा, प्यार ही की बात लो। मुझमें ज्यादा प्यार के वास्तविक रूप को कौन जान सकता है ! मैं औरत हूँ, पत्नी रह चुकी हूँ पूरे बाईस बरस, और मा हूँ उन्नीस बरस से—प्यार को यह त्रिवेणी मेरे कोरे हृदय में ही नहीं, आत्मा में, चेवना में ध्याप्त है।

अब तक मैं एक सच्ची औरत, सच्ची माँ और सच्ची पत्नी थी—केवल प्रेम के माध्यम से। प्रेम ही मेरी इन तीनों भवाइयों का मध्य बिन्दु था और लगातार बाईस वर्षों तक अनेकों कमीडियों पर कमा जाकर मेरा यह प्रेम एक प्रगाढ़ भासवा बन गया था—एक ऐसा भारी और अवर्द्धन माध्यम कि जिसपर मैं समझती हूँ, पूरी मानवता बाधम रह सकती है।

परन्तु अब मैं एक नई बात सोच रही हूँ, जो अब तक मेरे दिमाग में नहीं आई थी, त्रिनके इस पढ़नू को सोचन का मुझे अभी तक अबसर ही नहीं आया था। वह यह कि जीवन में क्या केवल प्यार ही ऐसी महान वस्तु है कि त्रिनके लिए जीवन बदल दिग जाएँ, और ऐसा दुःसाहम दिया जाए जैसा मैं कर चुकी हूँ ? अब मैं कुछ-कुछ समझ गयी हूँ कि ज्यों-ज्यों प्यार की प्रगाढ़ता बढ़ती जाती थी, और वह निस्तरता जाता था, तथा शरीर से हट कर आत्मा में, चेवना में प्रविष्ट होता जाता था—त्यों-त्यों वह अथना एक नया रूप बदलता जाता था।

वह रंग था कर्णव्य । सधमुच मेरा प्यार समूचा ही घोरन का मी, पत्नी का भी घोर माँ का भी प्यार न रहकर कर्णव्य बन चुका था; कर्णव्य का रूप धारण कर चुका था । घोर उमने मेरे इस जीवन में उत्तरोत्तर गरिमा, पवित्रता, आत्मविश्वास और हृदय दी थी । उसने मुझे प्रेरणा दी थी कि प्यार केवल इन्द्रिय-वासनाओं को ही तृप्त करनेवाली बस्तु नहीं है, वह जीवन को समार के साथ हृदय आत्मीयता के मूच में बांधने वाली बस्तु भी है, जिससे समाज बनता है, जिससे समाज की निष्ठा बनती है, और जो समाज को मर्यादा में बाधकर सम्भ्यता के सच्चे रूप में प्रकट करता है । वह काम एक स्त्री या एक पुरुष का नहीं, सबका है । करेणों स्त्री-पुरुष युग-युग से प्रेम को प्रगाड-प्रगाडनर बनाते हुए इसी भाँति समाज के चिरस्तन निष्ठा के रूप को, सम्भ्यता के निखार को प्रकट करने रहे हैं ।

भव उन प्यार का शायद मैंने दुरुपयोग किया है, उसे फिर से इन्द्रियों के भोगों को घोर लगाने की राड पर निकल आई हूँ । परन्तु क्या अब फिर से नया जीवन भी मुझ प्राप्न हो सकता है ? फिर से उन पल्लड उमंगों के तूफानों का मन में उबार उठ सकता है ? मैं तो वाईस बरस तक प्रेम की वासना का स्वाद तृप्न होकर चख चुकी । अब उसकी मूच कहा है ? मैं तो उससे अपना पीढ़ी में जाकर मा भी हो चुकी । प्रेम का वह आत्मन्य रूप भी सब चुक-चुकाकर खत्म हो गया । अब वह बासी कड़ी में उवाल कैसा ? छ महीने बाद मैं नई-नवेली बनने जा रही हूँ । भवे बहनों में सजधजकर, जैसा अब से वाईस वर्ष पूर्व मजी थी । भहनाइया बजेंगी, मिठाइया खाई जाएगी, जहन होंगे । पर मैं अपन चेहरे की मुरिया कहा खिपाऊंगी ? धरने ठण्डे, दान्त, तृप्त वातावरण में उत्तेजना और गुदगुदी कहा से लाऊंगी ? वाईस बरस तक कहना चाहिए पूरी जवानी-भर जिम भोग के जीवन को छरकर, तृप्त होकर भोग चुकी, उसके लिए अब नये सिरे से आकाशा, उत्तुवता और उमंग कहा से लाऊंगी ? इन सर बातों के लिए तो अब मेरी बेबी का कान था । अभी-अभी उस दिन एक हम दोनों—राय और मैं—उसके ब्याह की वातचीत करते रहे हैं । उन बातों में एक आनन्द, उछाह और आकाशा तो थी, पर अब भी क्या हम—राय और मैं—इस मुखद

विषय पर फिर बात करेंगे ? छि-छिः, अब तो मेरा ही ब्याह होगा ।
 और नाबूद बेबी उसे अपनी धार्मिक से देखेगी ! भोक !! मर्मे के मारे
 मैं मर न जाऊंगी ?

किन्तु अब तो मैं घर में बेघर होकर चौराहे पर घा लड़ी हुई हूँ ।
 सारे सम्म संसार से बाहर—बहिष्कृत, भजेली । न मैं रिमोंकी बुद्ध हूँ
 न कोई कहीं है । क्या कहकर अब मैं समाज में अपना परिचय दू ? नगर
 में हजारों गृहस्थ मुझे जानते हैं । हजारों मेरी प्रणिष्टा करने में । श्री
 राय एक प्रनिष्ठित नागरिक और भाफीमर है । उनकी प्रणिष्टा में मेरा
 भी हिस्सा था । सम्भ्रांन महिनाएं टल्मों में, समारोहों में खाव में
 भाकर मुझसे मिलनी थीं । हय-हंसकर पूछनी थीं—बेबी कौनी है ? राय
 कौने है—और मेरी धार्मिक गर्व और आनन्द से फूल उठती थीं । पर
 अब उन बातों से क्या ? अब तो मैं किसीको मुह दिखाना भी नहीं
 चाहती । घर-घर मेरी चर्चा है, बडनामी है । वे ही महिनाएं, जो मेरे
 सम्मान में धार्मिक विद्यानी थीं, मुझे हरजार्ड कहकर मुह बिचकाती है,
 पूणा करती है । भूवे-भटके कोई मुझे देख लेती है तो उंगली उठाकर
 कहती है—घड़ी है वह आबारा घोरत ! वे मुझे आबारा कहती है, हय-
 जाई कहती है, मेरे चरित्र पर कणक लगाती है, परन्तु मैं जानती हूँ—
 यह एक झूठ है । बेगक, मैंने दुःसाहन किया है दूसरी स्त्रियां नहीं
 करतीं—नहीं कर सकती । भुरचाप पति के चरमिचार को सहनी हुई
 घर में बैठी धायू बहाती रहती हैं । नाग, मैं भी वहीं भेड-झी स्त्री हौनी
 तो समझती । घोरत का जन्म ही धुट-बुटकर मरने और सहन करने
 के लिए होना है । सभी मर्दे अपनी-अपनी घोरतों की छापी पर मूग
 दमने हैं । इसमें नई बात क्या है ! पर मैं तो उन घोरतों से भिन्न प्रकार
 की हूँ । मैं यह कैसे बर्दान कर सकती हूँ ? मैं घोरत को जान को न
 केवल यही कि वह पुरुष के बराबर है, मानती हूँ, मैं यह भी मानती हूँ
 कि वह पुरुष से बडकर है । मैं यह भी जानती हूँ कि नयाज का बाहरी
 बन्धन चाहे जैसा हो, परन्तु जीवन में घोरत मर्दे के अधीन नहीं है ।
 मर्दे ही घोरत के अधीन है ।

एक बात यह बडो जा सक्ती है कि यातमम्मान के नाम पर राय
 को त्याग देना—उनसे संबंध बिच्छेद कर लेना मेरे लिए उचित ही

या, मैंने हीरू किया ; परन्तु अब मुझे दूसरे किसी पुरुष से विवाह नहीं करना चाहिए। एनापी जीवन व्यतीत करना चाहिए। इससे लोगो की नजर में मैं ऊंची उठ जाऊंगी। परन्तु इस बोच और लचर दलीचू को मैं क्रोधपूर्वक छोकर मारती हू। इसका तो साफ-साफ यही अर्थ है कि राय के अक्षय का दण्ड मैं भोगू। राय के मार्ग से सब विघ्न-बाधा हटाकर मैंने उन्हें सुलभ मोज-मजा करने के लिए छुट्टी दे दी, नुवि-बाधों की राह प्रशस्त कर दी, और अब मैं स्वयं मूली पर टंगी रहकर, समाज के धम से नाटी जाकर अपना सपना जीवन व्यतीत कर दू !

ऐसा मैं नहीं कर सकती, क्योंकि मैं सबसे अधिक अपने ही को प्यार करती हू। अपने को मैं दुनिया में सबसे अधिक प्रिय मानती हू। नर्तक्य और निष्ठा के नाम पर मैं आत्मपीडा से भी विमुख नहीं होना चाहती, पर मैं आकारण ही निराशावाद, आत्मपीडा और निरीह जीवन को भी नहीं पसंद करती। मैं घोरत हू, और मुझे एक मर्द चाहिए। वह बाल में अपनी आदर्शकता और रुचि के अनुकूल नहीं कहनी हूँ, न वह नारी-स्वभाव की मांग ही है। असम्भ्य युग में जब सम्भ्य समाज न बना पा—नर-नारी यौन-सम्बन्ध में उसी प्रकार स्वतन्त्र थे जिस प्रकार पशु-पक्षी। प्रत्येक स्त्री मानवादे पुरुष से यौन संबंध कर सकती थी, उसे छोड़ सकती थी। वह किसी एक पुरुष से अनुबन्धित नहीं थी। परन्तु सम्भ्यता की मर्यादा ने एक पुरुष के लिए एक स्त्री, और एक स्त्री के लिए एक पुरुष का बंधन लगा दिया। स्त्री में सम्भ्यता और समाज के इस बंधन को मान्य करके मैं सम्भ्यता ही की सीमा में अपने लिए एक अनुगत, प्रिय और अपनी पसंद का पुरुष मांगती हू। यह मेरा अधिकार है। इसे मैं नहीं त्याग सकती—किसी भी प्रकार से नहीं त्याग सकती।

आप कह सकते हैं कि अब जबानी बोल गई। गदहूगचीसी खःम ही गई। उनरती उधर है। अब ये सब बातें शोभनीय नहीं हैं। हीरू है। आप मेरी उधर की सब स्त्रियों से यही बात कहिए। उन्हें उनके पतिव्रतों से, परिवार से, परिवर्तनों से बहिष्कृत कर दीजिए तो मैं इस अभिजाथा को एक समाज का नियम मानकर स्वीकार करूंगी। यदि सभी स्त्रियों को उनके सामाजिक जीवन का आनन्द-योग करने का अधिकार है,

तो मुझे क्यों नहीं है ? मैंने कौन सा पापमात्र किया है ?

इसके धार्मिक विरक्ति के मुझे पूना है । मैं स्वयं ने मन्त्र को जानती हूँ — पर इतना ज्ञान भी नहीं है कि स्वयं की बन्धुओं को ही स्वयं जान घोर प्रहण करने योग्य बन्धुओं को बन्धु विधा जाए । ज्ञान ज्ञान उठने ही मैं मन-मूल स्वयं करती हूँ, घोर पीछे विरक्ति उग घोर नहीं देखती । पर धार करें कि मैं मन्त्र को स्वयं हूँ, मन्त्रागिनी बन जाऊँ, धारों धारों को देखती हूँ, नपसती हूँ, धारों मात्र को दुर्भाग में परिवर्तित कर हूँ — तो मन्त्रागिनी स्वयं मूलों में ही मन्त्र हो सकता है, मुझमें नहीं ।

मैं स्वयं के सर्वोच्च निम्न पर रहूँगी, अनिष्टा घोर धारण के सर्वोच्च धारण पर बैठूँगी, घोर जीवन के सब धारणों की प्राप्ति करूँगी । इस धारणमन्त्रान घोर धारणनिष्ठा के नाम पर मैंने धारण पर, पति, पत्नी, अनिष्टा घोर स्वयं स्वयं है, उमें मैं जाऊँगी नहीं — प्राप्ति करूँगी, घोर उमरी प्राप्ति के लिए प्राप्ति की बाड़ी लगाने दूँगी ।

बस एक निरोह पुरुष है, वह मैंने देखा है । एक अनिष्टित नाप-रिक्त भी है । उनका प्रेम सम्भीर है घोर के एक उदरतमद धारणी है । वे उन उग्र को पुरुष बुते हैं जिसमें मर्द के लिए घोरत खिलवाड को नहीं, काम की बन्धु रह जाती है । ज्यों-ज्यों वे मेरे निकट धारण गए हैं, मैं उनके प्रेम की गहराई घोर सचाई भी परलभो गई हूँ । धारण में मैं उनसे डरती थी, फिर उनके लिए मन में प्रेमभाव उगलन हुआ घोर धार तो दशाभाव भी है । वे मेरे लिए सब कुछ कर गुडरने पर धारणा है । फिर भी मेरा मन सब इन स्वयं पर धार पड़ने के बाद काप रहा है । इसलिए नहीं कि बस मुझमें विश्वासधान करे। ऐसा करके वे मेरा कुछ भी नहीं बिगाड सकते हैं । धारणा ही धारण लो रेंगे । मैं जानती हूँ — उन्हें मेरी धारण्यकता है, भारी धारण्यकता है । उनके जीवन में मेरी कभी है । वे मन्त्र है कि मेरे द्वारा उनका जीवन पूर्ण होगा ; घोर मैं जैसे राय क प्रति एकनिष्ठ रही, उनके प्रति भी रहूँगी — जब तक कि वे मेरे प्रति एकनिष्ठ हैं ।

बहुत पुरुष तन्त्र वृत्ति के होने हैं, जैसेकि राय है । उनकी वृत्ति

एक घोरत से नहीं होती । वे प्रेम में घोर वासना में अन्तर नहीं समझते ।
 उनका प्रेम वासना के क्षेत्र पर नाचता है । पर वासना शारीरिक उन्मत्त
 है और प्रेम मानसिक । वासना-पूर्ति के बाद ग्लानि उत्पन्न होती है
 पर प्रेम की न कभी पूर्ति होती है न इति, और न ग्लानि का समय प्रेम में
 है । राम पति की हेसियत से भी और पुरुष की हेसियत से भी एक स
 व्यक्ति हैं दोनों ही उपयुक्त गुण उनमें हैं, परन्तु वे सादर्श नहीं हैं ।
 के साथ एक रुढ़ीवादी पत्नी का निर्वाह हो सकता था जिसका प्रेम
 कोई व्यक्तित्व न हो, पर मुझ जैसी घोरत का नहीं जो अपने व्यक्तित्व
 और उसके मूल्य को जानती है । फिर भी मैं बाईस बरस उनके साथ
 रही । वर्मा सापेक्ष सादर्श पति प्रमाणित हो । उनके स्वास्थ्य प्रलम्ब
 राम की अपेक्षा अच्छा नहीं है, परन्तु मैंने उनके विलास में भी न अपेक्षा
 देखा है, न सम्पत्ति । उनके इसी गुण ने मुझे उनकी घोर भावना
 किया है, और मैं अब पनि रूप में उनका वरण करने पर सामर्थ्य

रेखा

माया ने घाघिर बर्मा से मिनिमैरिज कर ली। राय ने उसके सम्बंध में बहुत-बहुत जाने की है। ऐसा प्रतीत होता है, राय का दिल टूट गया है। ये जल्द ही माया को प्यार करते थे। यह सब प्यार सब उन्होंने मुझे ही समर्पित कर दिया है, वचन में भी और चेष्टा से भी राय यही प्रमाणित करने हैं। मैं उनसे प्यार करती हूँ या नहीं—यह मैं नहीं कह सकती। मैंने बहुत बार मन में इस बात का उत्तर मांगा है—पर हर बार दिल पटकने लगता है, उत्तर नहीं मिलता। फिर भी इनकी बात तो है कि जब उनके घाने का समय होता है तो एक विचित्र गुदगुनी मन में होने लगती है, और यदि घाने में जरा भी देर हो जाती है तो बेचैनी होने लगती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे जूरी चढ़नेवाली है। उनके घाने पर प्रसन्नता होती है, यह बात मैं नहीं कह सकती। शायद प्रसन्नता नहीं होती, भय होता है। किंतु भय किसने? दत्त से? नहीं, इस बात में वे पूरे सावधान हैं कि वे उसी समय आते हैं जब राय के घर में होने की सम्भावना नहीं रहती। फिर भी भय है। यह भय न मुझे दत्त से है, न राय से—धपने ही से है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं धपने ही से चोरी कर रही हूँ; धपने ही को छग रही हूँ। परन्तु उस भय के साथ एक अव्यक्त उत्तेजना भी, एक घातकम्पन भी मैं अनुभव करती हूँ। उनके संकषास में अवश्य मुझे एक धानंद मिलता है। उस धानंद की बात कही नहीं जा सकती है। उस धानंद में हर्ष नहीं होता—नाश होता है। यह न त्यागा जा सकता है, न घहरा किया जा सकता है। बहुधा मैं राय के जाने के बाद रोई हूँ, मन में प्रतिज्ञा की है कि कह दूंगी—नहीं, सब न पाया करें। पर मैं ऐसा नहीं कर सकी, शायद कर सकती भी नहीं। मैं बेबस हो जाती हूँ। जैसे बीन की स्वर-

सहरी पर मस्त होकर नागिन सहरानी है—उसी भाँति मैं भी सहरा उठनी हूँ।

दत्त के भ्रूणपात्र में मैंने हर्षान्तिरेक प्राप्त किया है। वे सब बातें मुझे अब भी याद हैं। उन्हें याद करके मुझे अब भी रोमांच हो जाता है। मैं साहनी हूँ, दत्त के भ्रूणपात्र में फिर से वही अनिर्वचनीय आनंद, वही हर्षान्तिरेक, वही पूर्ण वृष्टि, वही निश्चित सुख प्राप्त करूँ; पर नहीं कर पाती। दत्त का अब तो अब भी मुझे आनंद है। वे पहले की अपेक्षा अब मेरा बड़ा स्थान करने हैं। गराब भी कम कर दी है। प्रेमालाप भी करते हैं। सुख भी देने हैं। स्वीकार करती हूँ, गरीर-सुख देने की सामर्थ्य उनमें राय से बहुत अधिक है। राय की अपेक्षा वे सुन्दर भी अधिक हैं, बलवान भी अधिक और शायद प्रेमी भी अधिक हैं। वे मेरे हैं, मैं उनकी हूँ। उनके और मेरे मिलन में न कोई बाधा है, न भय, न रोकथाम है। जब वे निकट नहीं होते हैं, मैं उनका ध्यान करती हूँ। पर उनके निकट रहने पर राय की स्मृति मेरी चेतना को आक्रान्त कर जाती है, माहृत कर जाती है। उनके भ्रूणपात्र में मैं कटी पत्र के समान ढेर होकर पड़ जाती हूँ। उनकी किसी अभिलाषा में मैं बाधा नहीं देती, पर यह मैं देखती हूँ कि राय इससे संतुष्ट नहीं होते। उन्हें चाहिए मेरा आग्रह, प्रवृत्ति, प्रबल भोग की भूल। यह सब अब क्या है? कहाँ से दूँ मैं उन्हें ये सब अलम्ब्य पदार्थ, जिन्हें पाकर मर्द की मर्दानगी कृतकृत्य हो जाती है, वृत्त हो जाती है?

मैं जानती हूँ, पुरुष का स्त्री में यह प्राप्त है। पुरुष दाता होने का कोरा दम्भ भी नहीं करता। वह प्रकृत दाता है भी। वह आरम्भ से स्त्री को लेना सिखाना है और जब स्त्री लेना सीख जाती है—सीखकर वह अधिकाधिक लेने को पागल हो जाती है, तो वह उसे देते प्रयास नहीं है। ज्यों-ज्यों देता है, उमकी मर्दानगी निश्चरती है। जो आनंद स्त्री को लेने में पाता है उसमें सहस्र गुणा आनंद पुरुष को देने में पाता है, और ऐसे भी सख्त माने हैं जब स्त्री इतना भोगती है कि पुरुष का सर्वस्व शुक जाता है, दे नहीं सकता है, तब भी वह राई-रती सब कुछ दे डालने ही में चरम सुख की अनुभूति करता है।

इस दासत्व से ही वह स्त्री के स्त्रीत्व को खरीदता है। वह अखिल

संसार में विचरणा करता है, और स्त्री उमठी प्रतीक्षा में धाँवे विद्या
 बैठी रहती है, दातुर-व्याकुल। दत्त अभी देने में ममर्थ है। बहुत ममर्थ
 है। देय पदार्थ उनके पास बहुत है। वे अंधाधुंध देने हैं। पर जो कुछ वे
 देने हैं वह मेरे इधर-उधर चारों ओर बिसर जाता है, मैं उसे समेट नहीं
 पानी हूँ; जैसे पहले समेटती थी, पाकर हथिन होती थी—धब नहीं होती
 हूँ। दत्त जैसे यह सब देखने हैं। औरत यदि मर्द की मर्दानगी को सिर
 पर उठाकर उम्मत होकर हर्षवृत्त्य न करे, तो मर्द के दान का माहात्म्य
 भी क्या रहा ! मर्द दे और औरत उसे ग्रहण न करे, बखेर दे, बिम्बरा
 पड़ा रहने दे, तो मर्द यह सहन नहीं कर सकते। देने की ब्याचंटा लेने
 में ही है। बिना लिए देना व्यर्थ है। लेने का मुख जहाँ नहीं है—वहाँ
 देने का मुख भी नहीं है। यही मैं देखती हूँ। दत्त बड़े उत्साह में मुझे
 देय देने हैं। बड़ा दुर्लभ है वह दान—ऐसा तो मैं ने एकाध स्त्री को भी
 मिलना दुर्लभ है। बिसे बिचना है वह कुरकुर्य हो जानी है, उसका
 नारीत्व धन्य हो जाना है। पर जब वे मुझे लेने में एकदम उदासीन
 देखने हैं तो वे भी उदास हो जाने हैं। और उनका वह प्रवसाद भी
 कितना दयनीय है कि कभी-कभी मैं देखकर रो देती हूँ ! धब मुमलखाने
 से उनके गुनगुनाने की आवाज नहीं आती। धब बिरलियों की कड़क
 और बादलों की गर्जना उनके हास्य में नहीं दीख पड़ती। धब तो उनकी
 हंसी बरसाती घूप की भाँति अणिक होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि
 जैसे वे जीवन से थक गए हैं सभी से—इसी उम्र में। यद्यपि सभी
 उन्होंने जीवन का भोग भोगा ही क्या है !

बहुधा वे प्रद्युम्न के साथ बातें करते-करने रात को सो जाते हैं,
 और मुबह उसे जगाकर उसकी मोठी-मोठी बाने सुनने हैं। वे धब पनि
 कम और बिना अधिक बन गए हैं। पर मैं सायद न पत्नी रही हूँ न
 माता। धब क्या प्रवाम होगा मेरा ?

राज घरने काम में बहुत सावधान हैं। वे सदा अनुकूल समय पर
 घाते हैं। जब वे धाकिस चले जाते हैं, प्रद्युम्न स्तुभ बना जाता है।
 नौकरों की मैं दो घंटे की छुट्टी दे देती हूँ, और स्वयं ड्राइंग रूम में चली
 जाती हूँ। तभी वे घाते हैं, चुपचाप, और मैं उनमें लो जाती हूँ। बहुधा
 वे एक घंटा मेरे पास रहने हैं, पर एक एक घंटे में कभी-कभी एकाध

बात होती है। बानचीन प्यार-मुहब्बत की नहीं, पागामी मिलन-सवेत की। और कभी वह भी नहीं। वे जिस तेजी से चुपचाप आते हैं, उसी तेजी से चले जाते हैं। और उनके जाने के बाद उन्होंने जो कुछ दिया उसे बटोरने, सहेजकर रखने की चेष्टा करती हूँ। पर न बटोर सकती हूँ, और न सहेजकर रख सकती हूँ। वे प्यार देने हैं, मुँह देते हैं, तृप्ति देते हैं; पर उनके जाने ही वह प्यार भय बन जाता है, मुँह डंक मारने लगता है और तृप्ति प्यास की भडका देती है। मन हीना है—बय, सब नहीं चाहिए। पर उनके आने की प्रतीक्षा में मैं अधमरी हो जाती हूँ। ऐसी प्रतीक्षा मैंने दत्त की कभी नहीं की। झूठ मैं नहीं बोलूंगी, दत्त को मैंने प्यार किया—बहुन—बहुत—बहुन। पर राय को न सब न अब। बहुत सोचा, पर भीतर से द्वार बंद मिला, प्यार की आवाज सुनाई न दी। प्यार नहीं करनी हूँ तो क्या करती हूँ?—यह मैं नहीं जानती। दत्तनी अटक प्रतीक्षा कैसे करती हूँ, यह भी नहीं बता सकती। अपने को कैसे उनके घंके में सौं देती हूँ, यह भी नहीं जानती। केवल इतना जानती हूँ कि यह सब करके मुझी नहीं होती, निश्चिन्त नहीं होनी, तृप्त नहीं होती। मुँके लगता है, मैं जोर हूँ, मैंने अपने को टग लिया है, और मैं प्रखार-भक्षण कर रही हूँ। फिर भी उससे मैं अपने को बिरन नहीं कर पाती हूँ।

उम दिन मैंने कहा, "यह सब हो क्या रहा है? इनका अन्त क्या होगा?" तो उन्होंने जवाब नहीं दिया। वही डेर तक धाविगन में जकड़े बैठे रहे और फिर चल दिए। मैं माया की बात कहती हूँ तो लवी-लम्बी सांस लेने है। कहा गई उनकी यह वाचालता? पहले तो बहुत हसते थे, बातें बनाने थे, बड़े दिलचस्प आदमी थे। पर अब तो पत्थर के चुन हैं। बात, आकर टफराते हैं, पाव कर जाते हैं और चले जाने हैं।

मैं नहीं जानती कि दत्त को उनपर मन्देह है या नहीं—शायद नहीं है, शायद है। सुट्टी के दिन वे दत्त के सामने आते हैं। तब पहले जैसे बुहल करने की चेष्टा भी करते हैं, पर वह बन नहीं पाती। अपना पबराहट को वे प्रघुन्न से मन बहलाकर दिया लेते हैं। मैं भी तो आज उनसे बात नहीं करती। दूर ही रहती हूँ। क्या बात कहूं भला? अपने को कैसे ठगूँ? इतनी प्रबचना कहाँ से लाऊँ? मैं जानती हूँ—दत्त वां

नहीं सकती ? वह जगजाहिर हो जाता है । नहीं, नहीं, स्त्री पुरुष की समानता का दावा नहीं कर सकती । मैं धरने ही को देख रही हूँ न । मैं अभी से धरने को दया की भिक्षारिण समझ रही हूँ—दत्त भी दया की भी और राय की दया की भी । प्रकृत अधिकारिणी तो मैं प्यार की थी । प्यार क्या मुझे मिला नहीं ? सुब मिला—दत्त का भी और राय का भी । पर अब, अब वह प्यार ही मुझे नाग बनकर डत रहा है । अब वो वह दया करके मुझे छोड़ दे, डते नहीं यही मेरे लिए बहुत है ।

अब तो मुझे सस्यार में भय ही भय नजर आ रहा है । भय की काशी छाया हर समय मुझे घेरे रहती है । चाहती हूँ, राय से छुलकर जान नरू । नहीं तो उन्हें यहाँ न धरने को कहूँ, सब सम्बन्ध तोड़ दूँ । उन्हें दिल से निवाल फेंकूँ । अभी हुआ ही क्या है ! अभी तो सब कुछ वैसे में ही है । अब भी मैं सच्चे मन से दत्त को प्यार करूँ तो मैं निहाल हो सकती हूँ । परन्तु पता नहीं यह कौन शैतान मुझपर सवारी गाँठ रहा है, कैसा नाश मुझपर व्यापा है कि मुझे प्रकाश का सीधा रास्ता नहीं दीखता है । देखती हूँ कि जहर है, पर खाए जा रही हूँ । सच है—पानन की राह फिपननी होनी है । एक बार किसलने पर फिर सभलना मुश्किल है । अब तो दिल में घाव खा बैठे । मन में चोर घुस बैठा । गरीर में कसक का दाग लग चुका । मेरा नारी-जीवन मलिन हो गया, पत्नी की पवित्रता में खो चुकी । और जीवन की सीधी-सरल राह—सहस्राब्दियों में समाज के नियन्त्रा मनीषियों ने जिनका निर्माण किया था—छोड़कर मैं कटीली भ्राष्ट्रियों में गटक गई । कौन अब मुझे राह दिखाएगा ? कौन मुझे सीधी राह पर लाएगा ? कौन मेरा हिंदू है ? कौन मेरा सहायक है ? घरे, मैं तो खुद ही अपनी दुश्मन बन गई ! मैंने अपने ही हाथ से अपनी राह में कुएँ छोड़ लिए । भोजन में रेत मिला दिया, अंधार जीवन को धरने में समेटला-सा पा रहा है, भगवान ही जानना है कि अजाम क्या होगा !

लीलावती

दास ललावती की विशेष दया देने पर चले। उनके चले
 एक बात यह है कि वे एक दिन जब भी वे उनके घर आई थी। उनके
 मुझे बहुत प्यार किया था। सभी मे भी जाता। बहुत दूरी भी वे
 गये। सभी धर्म पर भी जो उनकी हनी। बड़ी प्यारी हैं विशेष रूप
 से उन्हें सब के दूरी रही है। सब बचने भी नहीं है। उनके बाद
 एकमात्र को गई आई। गाथा में धारित रूप से। और सब
 सब काव में धारित होकर पुनः एक रूप से। फिर भी दूरी है
 किसी भी दूरी के परे परत रही थी। सब मे सभी गई है, वेग सब
 में नहीं बनना। उन्होंने सभी काव में लगी कर जो। फिर भी सब
 मुझे! क्या नहीं, सभी को सब नहीं नहीं आई? गाथा में बहुत सब
 देने भी बहुत फिर भी, पर सभी मे एक न मुझे। ऐसा फिर का मु
 उनका गवार हुआ। ललाके के बाद के नहीं आई? कैसे लगी? क
 के मेरी सभी नहीं रही? मैंने सब गाथा के कथा "गाथा, सब सब
 मेरी सभी नहीं रही?" जो उन्होंने मैंने एक ही ही हमी इनपर क
 "क्यों नहीं केटी, पर मुझको मना है। नहीं भी नहीं हमने क्या?"
 सबमुझ, सब जाने मेरी मयक में धार भी नहीं था रही है। मैं
 उनके सह सब करने बना। फिरना प्यार करनी थी के मुझे! सब
 बहनी हूँ, सब भी करनी है। मैं उन्हें जानने हूँ। पर फिर भी
 मुझे छोड़ गई। मैं सबकी रह गई। गाथा सबने रह गई। पर
 उन्होंने कुछ भी भी नहीं सोचा। उनके बिना बना गाथा मुझको
 है? देखो—किसी हानि हो गई है उनकी! न काटे का ध्यान, न
 खाने-पीने का। सभी बन्दोबस्त भी सभी करनी थी। सब उनके धारित
 जाने का बन्द होना था, वे उनके धुने कपड़े निकालकर रख देनी थी।

टाई धपने हाथ से बांधती थी। नया कुमाल लहंगे पर खेब में रख देती थी, घोर जैसे रस्सी में बंधी हो, इस तरह खिंची हुई दरवाजे तक, बर्लें बानी थी। घोर अब उनके पास घर घाने का समय होता था, उससे प्रथम ही गर्म-लाखा नाश्ता सेंवार करती थी। मेरे कपडे बदलती थीं वचन ही से वे मुझे मुडिया की तरह सजाकर उनके सामने लाती थीं वन एक उन्हींकी बात उनकी जवान पर रहती थी। सो अब वे इस तरह खो गई निर्मोही होकर।

मुझे घर सूना लग रहा है। पापा ने कहा भी - कोई दाई रख लो दाई भला क्या करेगी? अब तो पापा की एक जिम्मेदारी मेरे ही ऊपर है। पर ममी जैसी कुर्नी, चुस्ती घोर मुचडाई मैं कहां से लाऊं? मम ने तो साइ-धवार में मुझे मिट्टी कर दिया था। पर मैं पापा को बल इस तरह निरीह-निराश्रित कैसे छोड़ सकती हूँ! मैं उन्हें घाकिस भेजकर कालिज जाती हू, और घाकर सबसे पहले उनके लिए नाश्ता बनाती हूँ। उनकी हर बात का पूरा ध्यान रखती हू, पर फिर भी उन्हें पहेले की भांति हंसा नहीं सकती, उनको उदासी दूर नहीं कर सकती।

मात्र छुट्टी थी। पापा कहीं दौरे पर गए हैं। परसों गए थे। इससे मैं भी उरा डीली पडी हुई थी। ममी की याद कर रही थी घोर कभी-कभी एकाध घामू सा जाता था। उसे योंही पोंछ लेनी थी। योंही बैंग-जोन के पन्ने पलट रही थी। धक्स्मात् ही घाकर उन्होंने मुझे धपने घबघाया मे वाघ लिया। पहले तो मैं घबरा गई। बाद में उन्हें देला नमस्कार दिया। परन्तु उन्होंने मुझे छोडा नहीं। गोद में लिए बैठी रही जैसे बच्चे को लेकर मा बैठती है। कितना धकड़ा लगा मुझे, बरा कहूँ!

उन्होंने हंसकर कहा, 'मनेली बैठी कियही याद कर रही थीं बेबी।'

“भायकी!” मैंने भी हसते हुए कहा।

“कच? ममी की नहीं?”

“घाव मेरी ममी हैं!” न जाने कहां से एक लीज मन से बाह निकल घाकर जवान पर बैठ गई ममी की याद से घोर मेरे मूह से घः वाक्य निकल गया। उन्होंने मुनकर मुझे धूम लिया। घाहिस्ता से कहा - 'कच, मैं तुम्हारी ममी होती! कितनी प्यारी बिदिया हा तुम! कैं

तुम्हें खोजकर बनी गई तुम्हारी ममी !” बेटी बालों में धातु गुनगुना
लगा । उन्होंने धातु पीसकर कहा

“पर तो तुमने मुझे ममी कह ही दिया !”

“वात बेटी ममी है, हाथा पाता तो ममी ही कह सकते हैं।” बेटी
कहा और उस क कहने में धातु की मुहल्लत बान थी ।

इसके बाद बहुत ही बारी हुई । बारी बरिनत ताता के मरणात्त के
थी । वे मोर-मोहरकत पूरने लगी, “कभी तुम्हारे पाता की बान बने
है तुम्हारी ममी को, बेटी !”

मैं क्या जराब देती भला ? मैं बूत हो गई । पाता की बान मुम्हने
का के जैसे बहुत जगुन हो रही थी । मुम-किरकर किन उन्नीही बारी
रखी थी । उन्होंने पूरा, “कहा तुम्हारी ममी तुम्हारे पाता को बहुत
प्यार करती थी ?”

“घोर, बहुत” “बहुत !”

“घोर तुमको ?”

“मुझे भी ।”

“किर ऐसी मुन्दर विदिया, ऐने पर घोर बनि को खोहरक के बन्ने
करो गई ?”

मेरा मन कुछा मे मन मारा यह बान मुनकर । भला मेरे पात इन
बातों का क्या जराब था ! पर भीने-भीरे उन्होंने मुम्हने पाता की बहुत
बाने जान थी । पाता ममी को बाह करके रोने है । पात को देर तक सोने
नहीं है ; जीवन की हर बाब में उदासीन हो गए हैं । वे सब सुनती रहीं ।
चुपचाप सुनती रहीं । किर उन्होंने एकान्क पूछा, “बेटी, तुम्हारे पाता
का भला घोर भी कोई प्यार करना है ?”

मैं उनका मुह ताकने लगी । मेरी नमक मे बान नयो घाई ।

उन्होंने कहा, “यदि कोई उन्हें उनना ही प्यार करे जिनना तुम्हारी
ममी करती थी, तो तुम उसे क्या कहोगी ?”

“मोह ! मैं भी उन्हें प्यार करूंगी । पर ममी जैसा प्यार पाता का
कौन करेगा ?”

“यदि मैं करूँ ?”

मैंने घबकबाकर उनके मुख की घोर देखा । वह लाल हो रहा था

घोर घातों साइन-घातों के बादलों भी भाति मरी हुई थीं। मैं कुछ घोर कुछ न समझी। 'घोड़' कहकर उनकी गोद में गिर गई।

घोर तब उन्होंने सोलकर गब कालें मुझे घीरे-घीरे बला दी मैंने दुनिया नहीं देखी थी, पर मैं उनकी बातें सब समझ गई। जान गई कि पापा उन्हें प्यार करते हैं और वे पापा को प्यार करते हैं इस काम में कुछ बाधाओं की घोर उन्होंने नकत किया जिन्हें समझ सकी। पर प्रेम-स्वार की बातें सब समझ गई। सुनकर कष्ट, घातोंका, उद्वेग मेरे मन में उत्पन्न हुआ। धन्त में उन्होंने 'बेबी, तुमने मुझे ममी कहा है। भाग्य ने तुम्हें ममी की गोद दिया है। मैं जानती हूँ, तुम्हारी ममी के जाने का तुम्हें भी नदम तुम्हारे पापा की भी है। घोर अब तुम बचनी नहीं हो—समझनी हो। जैसे भाग्य ने तुम्हारी ममी से तुम्हारे पापा का कया दिया, उनी भाति भाग्य ने मुझे उनसे मिला दिया। बहुत मैं सोच रही थी कि मैं तुमसे यह बात कह दू। तुम्हें तो मैंने उ एक बार देखा था जब तुम मेरे घर गई थीं। किन्तु उसी एक के बाद मैंने तुम्हें कभी नहीं भुलाया। और जब तुम्हारे पापा घनिष्ठता बढ़ी, तो मेरे मानस में यह एक तीव्र भावना उत्पन्न मैं तुम्हारी ममी बनने जा रही हूँ। जैसे आदर्य की बात है कि मुझे ममी मान लिया। अब मुझे एक बात बनावनी—वही बात मैं तुम्हारे पास आई हूँ।"

"माप पूछिए।"

"यदि मैं उस घर को छोड़कर तुम्हारे घर घा रहूँ, तो विषय में क्या क्याल करोगी?"

"माप मेरे घर में कैसे घा रहेंगी?"

"जैसे तुम्हारी ममी बर्मा साहब के घर पर आकर रहीं।"

"लेकिन उन्होंने तो पापा को तलाक दे दिया और उनसे ली।"

"मैं भी दत्त की तलाक दे दूगी और तुम्हारे पापा से लूंगी।"

"हे भगवान ! ऐसा भी कही हो सकता है।"

"बुरा हो जाना, है दुखाने दुख से दुखाने, सभी कामकाज का बाँट, मेरे दुख काट करके है।"

"है धाराको ग्यार करके देखे, है धाराको ग्यार करके है।" है धाराको है धाराको की धारा बह सभी धारा है दुखको मंद है धारा है।

सुनीलदत्त

क्या रेखा बधादार घोरत नहीं है ? लेकिन मैं यह कौड़ी बाहियान वान सोच रहा हूँ ! मुझे जल्दो में कोई निरुंय नहीं देना चाहिए । सब बातों पर अच्छी तरह सोच-समझ लेना चाहिए । यास्त्रिर यह सवाल मेरे मन में क्यों घर करता जा रहा है ? वैशक रेखा के व्यवहार में भव जमीन-घासमान का घन्तर हो गया है । पर इसके दूसरे स्वाभाविक कारण भी तो हो सकते हैं । यास्त्रिर यह भव एक बच्चे की भी माँ है । हमारा क्याह हुए भव की साल बीत रहे हैं । भव में उससे एक नई-नवेली स्त्री की भाँति व्यवहार की भाशा कैसे कर सकता हूँ ? फिर उसका प्यार भव पति-पुत्र में भी तो बंट गया है । क्या मुझे मुनासिब है कि मैं बेटे से ही ईर्ष्या करूँ ?

लेकिन वह मेरे लिए एक ठण्ठी घोरत है । मेरे स्त्री से उसमें नारीत्व का जागरण नहीं होना—उलटे वह पिछुड जाती है, छुईमुई भी भाँति । उसका यास्त्रिगन भी भव सशैव नहीं रहा । उसमें भव न 'ना' है—न 'हा' है । जैसे वह एक पत्थर की निर्जीव मूर्ति है । जैसे उसकी रंगों में लहू नहीं है, पानी है । यह कभी उत्तेजित नहीं होती । कभी उसकी चेष्टा में गर्मी नहीं माली । परन्तु यह एक रोग भी तो हो सकता है । हाँ, हाँ, यह एक रोग है । बहून स्त्रियों को यह रोग होता है । वे ठण्ठी होनी हैं । मैं इस सम्भव में बहुत अच्छी तरह विचार करता रहा हूँ । मैं न मूढ पुरुष हूँ, न मूर्ख । मैंने सभी बातों पर वैज्ञानिक विवेचन किया है ।

निस्सन्देह नर-नारी का वैध सम्भोग ही विवाह का उद्देश्य है । वैवाहिक जीवन की सबसे बड़ी सफलता 'बराबर की जोड़ी' है । मैं जानता हूँ कि सम्भोग की वान मशलीन और घृणास्वद सचभी जाती

है। घोर विवाह के समय सौ में एक भी आधा सम्भोग-संक्रांती समानता की बातों पर विचार नहीं करता। घोर इसका यह परिणाम निकलना है कि विवाह एक घोर की टूटी प्रमाणित होता है। विवाह के बाद या तो जन्म ही पति-पत्नी में विच्छेद हो जाता है, या कलह के बीच जमने है, या दोनों में से कोई एक या दोनों ही परस्त्रोनामी घोर पर-पुरुष-गाभी हो जाते हैं। समय घोर मुष्पिा उनमें यह सब नाम करानी है। वहीं पुरुष ना अनिरेक होता है घोर वह बनास्कार की सीमा तक पहुच जाता है। तब वे प्रगार कष्ट पानी है, घोर अमाध्य रोगों की निकार हो जानी है। कुछ सामाजिक स्थिति हो ऐसी है कि स्त्री को पति की इच्छाओं में विवश होकर दामी बनने को छोट दूररा मार्ग ही नहीं रह जाता। वह यदि ऋगदा करती है तो पति अन्यपतिता स्थितों से सर्वत्र संश्रव स्थानित कर लेता है, जो एक नये बनेश का कारण बन जाता है। मैं ऐसे बहुत-से पुरुषों को जानता हूँ। उनमें अनेक प्रतिष्ठित घोर मुसिसित पुरुष भी हैं।

निस्संदेह पुरुष बलान् स्त्री से उनकी इच्छा और भावश्यकताओं की परवाह किए बिना संभोग नहीं कर सकता। यदि करे तो वह स्त्री के लिए एक बनेश का कारण बन जाएगा। अपने स्त्री की किसी भी प्रकार का सुख प्राप्त न होया, घोर वह विकट स्लापुसुरोगों का शिकार बन जाएगा। इनके अनिरिक्त ऐसी क्षान्त में—उनमें चाहे जितना प्रेम हो—उसमें विरक्ति के बीच उग पाएंगे। घोर उनमें वह गहरी एक्ता, जिसकी दोनों के लिए बड़ी भावश्यकता है, नहीं उगल हो सकती। मैंने इन सब बातों पर विचार किया है, इनको लाभ-हानि पर दृष्टि दी है। इसीसे मैं अपने को काजू में रखता हूँ। रेखा की रचि घोर इच्छा के विपरीत बलात्कार नहीं करता हूँ। परन्तु मैं एक स्वम्य पुरुष हूँ। पत्नी में एकनिष्ठ हूँ। मेरे मन में जब स्त्री को भूख जागरित होती है, तब मेरी भावश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए। वह पूर्ति रेखा नहीं करती। इसीसे मेरे मन में यह संका उठती है कि वह ठण्डी है। परन्तु वह पहले तो ऐसी न थी। मैं जानता हूँ, कुछ स्थिपा स्वभाव से ठण्डी होती है। कुछ विथाप न मिलने से ठण्डी हो जाती है। ऐसे पुरुष बहुत हैं जो इस क्षान की परवाह नहीं करते कि संभोग में उनकी स्त्री उनकी सगिनी घोर

हिस्सेदार है भी या नहीं। ऐसे वे लोग होते हैं जो स्त्रियों को बच्चा पैदा करने की मशीन समझते हैं बहुत-सी स्त्रियाँ शील-संकोच के कारण अपने मनोभाव प्रकट नहीं करती और वे पति के सच्चे सहवास-मुख में शंचित रह जाती हैं। परन्तु रेखा के सम्बन्ध में तो ये बातें नहीं हैं। पहले वह मेरी सच्चे शरीर में बराबर की भागीदार थी, पर अब नहीं। अब उसे क्या हो गया है। कोई रोग है या कोई और बात है? मुझे पता लगाना होगा। इसीसे उस दिन मैंने उससे इस सम्बन्ध में बातें की थीं। पर उसने एक सूझा-सा जवाब दे दिया कि उसे कुछ भी नहीं हुआ है, वह ठीक है। पर ठीक कहा है? फिर यह हसाई उससे कहा मैं उत्पन्न हो गई है? मैंने उसे डाक्टर के महा चालने को कहा, पर उसने इन्कार कर दिया। वह अब घबरा पर घाते ही सो जाती है। बहुधा वह प्रसुम्न के माथ सोना पसन्द करती है। मेरा प्रेमालाप तक अब उसे माह्य नहीं है। वह मुझे रुवाई से झिड़क देती है। उसका कहना है कि अब हम नवदम्पति नहीं रहे और हमें कामुकता की बातें या खेप्टा नहीं करनी चाहिए। मैंने ध्यान से देखा है कि उसके मन में विरक्ति और घासों में घृणा के से भाव उभरते चले जा रहे हैं। जितना ही मैं उसे निकट लाना चाहता हूँ, वह दूर भागती है। ऐसा प्रतीत होता है, उसे अब मेरी आवश्यकता ही नहीं रह गई है।

अन्ततः मैं निकित्ताक के पास गया। सब हकीकत बयान की। उसने मुझे उसके लिए कुछ शोध दी और कहा कि मुझे धैर्य में काम लेना चाहिए, सच्चा प्रेम प्रकट करना चाहिए, नोमल व्यवहार से उसे प्रनन् रचना चाहिए। इन तरह धीरे-धीरे उसका ठण्डा मन पिघलेगा। रातीर मैं जिन तत्वों की बर्मी है, उनको पूर्ण शोध करेगी।

मैं स्वीकार करता हूँ, कभी-कभी जब मैं उसे अपने निकट निर्जीव-सी पटी देखता हूँ तो मुझे शोध प्य जाता है। पर चिढ़ने और शोध करने से क्या होगा? रातीर से उसका सही कारण दूटना होगा। मैंने उसे शोध दी, उसने उसे नहीं खाया। एष अबजा की नजर मुझपर टानी।

वह कहती है कि वह ठीक है, शोचिणी नहीं है। मैं भी अब यही समझता हूँ। तब उसकी इस घोर विरक्ति का कारण क्या है? यदि वह

है। घोर विवाह के समय सौ में एक भी जादा सम्भोग-संबन्धी समानता को बातों पर विचार नहीं करता। घोर इसका यह परिणाम निकलता है कि विवाह एक घोड़े की टट्टी प्रमाणित होना है। विवाह के बाद या तो जल्द ही पति-पत्नी में विच्छेद हो जाता है, या कलह के बीच जमने हैं, या दोनों में से कोई एक या दोनों ही परस्त्रीगामी और पर-पुरुष-गामी हो जाते हैं। समय और मुविधा उनसे यह सब काम कराती है। वहीं पुरुष का प्रतिरेक होना है और वह बलात्कार की सीमा तक पहुंच जाता है। तब वे घगर कष्ट पाने हैं, और घनाघ्य रोगों की शिकार हो जाती हैं। कुछ सामाजिक स्थिति ही ऐसी है कि स्त्री को पति की इच्छाओं से विवश होकर दामी बनने को छोड़ दूसरा मार्ग ही नहीं रह जाता। वह यदि ऋगडा करती है तो पति अन्य पतिता स्त्रियों से सर्वत्र संबन्ध स्थापित कर लेता है, जो एक नये क्लेश का कारण बन जाता है। मैं ऐसे बहुत-से पुरुषों को जानता हूँ। उनमें घनेक प्रतिष्ठित और मुनिकित्त पुरुष भी हैं।

निस्संदेह पुरुष बलान् स्त्री से उमकी इच्छा और आवश्यकताओं की परवाह किए बिना संभोग नहीं कर सकता। यदि करे तो वह स्त्री के लिए एक क्लेश का कारण बन जाएगा। उमने स्त्री को किसी भी प्रकार का सुख प्राप्त न होगा, और वह विकट स्नापुरोषों का शिकार बन जाएगी। इसके अनिरिक्त ऐसी ज्ञानत में—उममें चाहे जितना प्रेम हो—उममें विरक्ति के बीज उग पाएंगे। और उनमें वह गहरी एता, जिसकी दोनों के लिए बड़ी आवश्यकता है, नहीं उत्पन्न हो सकती। मैंने इन सब बातों पर विचार किया है, इनकी साध-हानि पर दृष्टि दी है। इसीमे मैं पाने को साधु में रखता हूँ। रेखा की इति और इच्छा के विररीन बनात्कार नहीं करता हूँ। परन्तु मैं एक स्वस्थ पुरुष हूँ। पत्नी में एकनिष्ठ हूँ। मेरे मन में अब स्त्री की भूष जापरित होती है, तब मेरी आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए। वह पूर्ति रेखा नहीं करती। इसीमे मेरे मन में यह संका उठती है कि यह ठगी है। परन्तु वह पटने तो ऐसी न थी। मैं जानता हूँ, कुछ स्त्रिया स्वभाव से ठगी होती हैं। कुछ विद्यान न भिन्नने मे ठगी हो जाती हैं। ऐसे पत्नी-बात की परवाह नहीं करने बि...

दिलीपकुमार राय

स्त्री जितनी ही घीलवती होती है उतनी ही वह संवेदनशील होती है। जितनी वह संवेदनशील होती है उतनी ही भावुक होती है। जितनी वह भावुक होती है उतनी ही प्रेमवती होती है। जितनी ही वह प्रेमवती होती है उतनी ही भावही स्वभाव की घोर मानवती भी होती है। सभी भावुक, एकनिष्ठ घोर प्रेमवती स्त्रियाँ मानवती दृष्टा करती हैं।

प्रेम मन का एक अत्यन्त कोमल घोर संवेदनशील भाव है। उस का संबंध चेतनाशक्ति के सबसे अधिक गतिसम्पन्न घोर प्रवाहमय केन्द्र से है। इसलिए अत्यन्त कोमल प्रभाव में स्त्री से पुरुष पर घोर पुरुष से स्त्री पर जाता है, वही सर्वाधिक शक्तिशाली होता है। इस नाजूक तथ्य को साखी करोड़ों नर नारी नहीं जानते। कोमल, भावुक, प्रेमवती स्त्री तनिक-सी भी तो पश्यता—बठोरता—को नहीं सहन कर सकती। कामावेग बेशक कठोर आघात चाहता है। कामावेग में स्त्री परम सीमा का कठोर आघात भी सह सकती है। कहना चाहिए, उसकी कामना करती है—पर तन का ही, मन का नहीं। कामावेग से प्रथम प्रेमावेग का ज्वार आता है। कहना चाहिए, कामदेव प्रेमावेग पर ही सवार होकर आते हैं। स्त्री प्रेमावेग में अतिशय भावुक, अतिशय नाजूक हो जाती है। उसकी सम्पूर्ण चेतनाएँ संवेदनशील बन जाती हैं। इसलिए वह प्रेमावेग में एक बाल बराबर की भी बठोरता-पश्यता सहन नहीं कर सकती। उस समय का पुरुष-मन का तनिक-सा भी पुरुषभाव उसे विरत कर देता है।

रति प्रेम और धाम दोनों ही का सार है। रति में स्त्री का विरत होना भला कैसे सहा जा सकता है। रतिकाल में विरत स्त्री तो है ही नहीं, स्त्री की साध है। कौन पशु साध के साथ रति कर सकता है !

दिलीपकुमार राय

स्त्री जितनी ही शीलवती होती है उतनी ही वह संवेदनशील होती है । जितनी वह संवेदनशील होती है उतनी ही भावुक होती है । जितनी वह भावुक होती है उतनी ही प्रेमवती होती है । जितनी ही वह प्रेमवती होती है उतनी ही धीरही स्वभाव की और मानवती भी होती है । सभी भावुक, एकनिष्ठ और प्रेमवती स्त्रियाँ मानवती दृष्टा करती हैं ।

प्रेम मन का एक अत्यन्त कोमल और संवेदनशील भाव है । उस का संबंध चेतनाशक्ति के सबसे अधिक शक्तिसम्पन्न और प्रवाहमय केन्द्र से है । इसलिए अत्यन्त कोमल प्रभाव जो स्त्री से पुरुष पर और पुरुष से स्त्री पर आता है, वही सर्वाधिक शक्तिशाली होता है । इस नाशुक तप्य को लाखों करोड़ों नर नारी नहीं जानते । कोमल, भावुक, प्रेमवती स्त्री तनिक-भी तो पक्ष्यता—कठोरता—को नहीं सहन कर सकती । कामावेग बेशक कठोर घाघात चाहता है । कामावेग से स्त्री चरम सीमा का कठोर घाघात भी सह सकती है । कहना चाहिए, उसको कामना करती है—पर तन का ही, मन का नहीं । कामावेग से प्रथम प्रेमावेग का उबार आता है । कहना चाहिए, कामदेव प्रेमावेग पर ही सवार होकर आते हैं । स्त्री प्रेमावेग में अतिशय भावुक, अतिशय नाशुक हो जाती है । उसकी सम्पूर्ण चेतनाएँ संवेदनशील बन जाती हैं । इसलिए वह प्रेमावेग से एक बाल बरान्बर को भी कठोरता-पक्ष्यता सहन नहीं कर सकती । उस समय का पुरुष-मन का तनिक-सा भी पुरुषभाव उसे विरत कर देता है ।

रति प्रेम और काम दोनों ही का सार है । रति में स्त्री का विरत होना भला कैसे सहा जा सकता है । रतिकाल में विरत स्त्री तो है ही नहीं, स्त्री की लान है । कौन पशु लान के साथ रति कर सकता है !

इसलिए रति का प्राण भावातिरेक है। भावातिरेक से ही रति सच्चिद-सप्राण बनती है। सप्राण रति ही स्त्री को सम्पूर्ण प्राप्त कर देती है और पुरुष के पौष्ट्य को कृतकृत्य करती है।

मैं नहीं जानता कि घाघ मेरी बान को ठीक-ठीक समझ भी रहे हैं या नहीं। घाघ यति है या पत्नी—मैं यह नहीं जानता, पर मैं इतना कह सकता हूँ कि दाम्पत्य जीवन में घाघ रति के समुद्र में चित्तों की बान उभर कर चुके हैं, पर रति का लाभ भी घाघको प्राप्त हुआ है या नहीं, उस दुबकी में घाघके प्राण-स्फुरण में घालनातिरेक का मौती मिला है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। जिस ही स्त्री-पुरुषों को वह मौती मिलना है। बहनों को भी मिलना है और बहनों के साथ घोषे हो रह जाने हैं।

बहरहाल पुरुष और स्त्री के पारम्परिक सम्बन्ध में मेहन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भिन्नभिन्नी का परस्पर आकर्षण स्वाभाविक है। बहुधा वह आकर्षण प्रकृत रहता है। और जब वह आकर्षण किसी परस्त्री और परपुरुष के बीच सर्वथा खत्म हो जाता है तो बड़ी कठिन समस्याएँ या उत्पन्न होती हैं। जिनमें सबसे बड़ी रसयंग की एवं रतिनाम की समस्या है, जो इनके बड़े मनरे और दुःसाहन को ही समाप्त कर देती है।

मैं घाघसे यह बान नहीं छिपाना चाहता कि मेरा तारीख-सम्बन्ध अविवाहित सखियों के भी रहा। परन्तु घाघको यह जानकर घाघत्व ही सकता है कि पश्य उपर से हुई। घाघ देखने ही है कि मैं कोई युवा पुरुष नहीं हूँ। घाघने को मैं सुन्दर कहने का भी साहस नहीं कर सकता। परन्तु मैं यहाँ भी इतना पूर्वक कह सकता हूँ कि कामोत्पन्न-नाम से अविवाहित सखियों ने मोदते देखनी है, न घाघ, न प्रेम। वे देखनी हैं वह व्याज जो मेरी से उन्हें देखने ही भरक उठती है और जिनके मुख में विनम्रमैत्रिक आकर्षण होता है। मैं बस कहता हूँ कि किसी भी बड़ प्राण सुन्दरी लड़की को देखकर मेरी घाघों में वह व्याज भरक उठती है। और मैंने घाघर की घाघों के आकर्षण से उगता सिद्धा घाघने घाघ ही घाघर उगते मुझ से कहा जाता है, वे सखियाँ मुझसे सदा लगी रही हैं। बहनों का मैं दुःसाहन हूँ, घाघमयिण करता हूँ, परन्तु वे

र मेरे घरणो मे गिरती है । यह एक नैसर्गिक धारमर्षण है, जहाँ
 हो जाती है, सास कर छोटी उच्च की होने के कारण । मैंने
 कियो की मनोवृत्तियाँ देखी हैं । उनका मन न घर के काम-काज
 है, न पढ़ने-लिखने मे । वे घर के सौर्णों के अनुशासन को भी
 नहीं । देखने मे वे सर्वथा उदासीन और घरतिव-सी लगती हैं ।
 चपलता या विनोद की मात्रा भी नहीं होती । वे भिन्न-
 की प्राप्ति के लिए भीतर से बेचैन रहती हैं । और इसके लिए
 भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके रक्त मे प्रन्दर कुछ विशेष
 न विविष्ट प्रन्दियो के निचोड-स्वरुप मिलते रहते हैं । मैं ऐसी
 को पहचान लेता हू । और एक ही प्यासी नजर उन्हें मेरी गोद
 डालती है । बहुत कम मुझे उनसे प्रेमाभिनय करना पडता है ।
 इसकी तनिक भी आवश्यकता नहीं पडती ।

रन्तु रेखा का मामला इन सब लडकियो से भिन्न है । वह एक
 हिता पत्नी है । उसका पति उसको बराबर की जोडी का है । यह
 और स्वस्व है । वह उससे पूर्णतया प्रेम करता है तथा उसकी
 सम्बन्धी आवश्यकताओ की भी पूति करने मे समर्थ है । भिन्न-
 कोई भी कारण ऐसे नहीं है जो रेखा को किसी पुरुष की ओर
 दिय करें । इसीसे मेरी नजरों का वार उसपर पाली जाता रहा—
 पाच वर्षों तक । उसने मेरी ओर सेवक-भादना से एक बार भी
 उठाकर नहीं देखा । अपने पति की भाति ही वह अपने पति को
 करती थी । अपना तन-मन उसने अपने पति को सम्पूर्णरुपेण
 दे दिया था । स्त्री की हैसियत से भी और पत्नी की हैसियत से
 । जहाँ तक सेवक का सम्बन्ध था, वह अपने पति से सतुष्ट थी ।
 मे विकार घाया—रतिभाव पर । स्त्री शरीर-सहवास के साथ जिस
 -बिलासकी आवश्यकताका अनुभव करती है वह दत्त से उसे
 नहीं हुई । दत्त इस सम्बन्ध में अनाडी और असावधान व्यक्ति
 वह प्रेम की केवल मन का और सहवास को शरीर का विषय
 ता है । जैसे वह प्रेम में परिपूर्ण है, जैसे ही सेवक-पूति मे भी चूटि-
 त है । पर वह प्रेम और काम के सतुलन का ठीक न बनाए रख
 जिससे रेखा का रतिभाव भंग हो गया । उसमे विरक्ति का अकुर

जग साया । मैंने उसे देखा और ठीक समय पर उसे अनिदान दिया और उसे जीत लिया । अब वह मेरी है ।

विवाह एक आत्मिक सम्बंध है और नारीरिक भी । वैवाहिक जीवन की सार्थकता तभी है जब नारीरिक संबंध आत्मिक सम्बंध में परिणत हो जाए । स्त्री-पुरुष का एवं पति-पत्नी का साहचर्य तभी पूरा हो सकता है । परन्तु दत्त जैसे गढ़े-लिम्बे मूर्ख इस मर्म की बात को नहीं जानते । विवाह के पांच वर्ष बीत जाने पर भी रेखा और दत्त का नारी-सम्बंध आत्मिक सम्बंध का रूप धारण न कर सका । रेखा उनके लिए छुटपटानी रही और दत्त ने उधर ध्यान ही नहीं दिया । वास्तव में उसे इन महत्व की बात का ज्ञान ही नहीं है । वह अपने को एकनिष्ठ और कर्तव्यपरायण पति तो समझता है, पर उसने रेखा को अपना समर्पण तक एक बार नहीं किया । नहीं तो क्या रेखा जैनी पतिनी मेरे हाथ में मझनी थी ? यह तो मुझे एक अनम्य लाभ हुआ, केवल दत्त की मूर्खता के कारण । परन्तु अकेला दत्त ही ऐसा मूर्ख नहीं है । हजारों, लाखों, करोड़ों पति ऐसे ही मूर्ख होने हैं और अपनी मूर्खवान मति को गंवा बैठने हैं ।

पुरुषों ही की भांति कुछ स्त्रियां भी भूढ़ होती हैं । वे अपने प्राप्तव्य को नहीं जानतीं, और समझती हैं कि अपना नारी पुरुष को दे देना एक तरह का धर्म है । इतने में उन्हें जरा-सा स्पर्श-सुख भी प्राप्त हो जाता है । पर वही धोड़ ही स्त्री का प्राप्तव्य है ! जैसे हमारे पड़ोसी पति की सुख-गुविधा के लिए उसे करने पड़ते हैं, वह भी एक काम उसके सुख के लिए कर डालती है, इसमें भी उसे उतनी ही श्रम प्राप्त होती है जितनी घर के हमारे कामों में । इसीसे उसे इस कार्य में अभिरुचि और भासक्ति नहीं रहती, और रतिभाव का उदय ही नहीं होता । ऐसी स्त्रियां शीघ्र ही सहवास को घृणित और गदा काम समझने लगती हैं, और पति से विरत हो धार्मिक भावना-प्रधान हो जाती हैं ।

परन्तु यदि स्त्री सचेतनशील है, और उसे अपने प्राप्तव्य का पूरा ज्ञान है, तब बात ही दूसरी हो जाती है । ज्यों-ज्यों उसमें अपने प्राप्तव्य के लिए अभिलाषा और मानसा जागरित होती जाती है, वह अपने पति

और विरत होती जाती है । इस स्त्री में और उस स्त्री में न का अन्तर रहता है । पूर्वोक्त स्त्री पति से नहीं, महामान

करती है। पर यह स्त्री सहवास से नहीं, पति से घृणा करती
 किती भी चतुर पुरुष को ऐसी स्त्री को घपनी सपेट में भगट
 या घनसुर हम तरह मिल जाता है। रेखा का मामला सर्वथा
 है।

रमान रहना चाहिए कि पत्नी कोई बेरया नहीं है, जिससे पुरुष
 अपने सुख की प्राप्ति करे। उसका मनिवायं कर्तव्य हो जाता है
 स्त्री को भी उसका प्राप्तव्य सम्पूर्ण मुख दे और पहले दे। यदि
 नहीं करता है तो उसका प्रेम चाहे जितना महान हो, उसका
 ठोके के बराबर भी मूस्य नहीं भांजा या सजना। यौन-मिन्न
 ारीरिक मिलन ही नहीं है, बिना महन मानसिक मिलन के वह
 म्पूर्ण नहीं हो सकता। और यह ारीरिक मिलन-वास का
 क मिलन ही वैवाहिक जीवन की सफलता का सबसे बड़ा मूला-

1
 जीवन एक दार्शनिक सत्य है, और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारा
 एक दृष्टिकोण होना चाहिए। वह दृष्टिकोण ऐसा हो जो नैसर्गिक
 प्रकृतियों के व्यावहारिक रूपों को घपनाए, जिससे व्यक्ति और
 दोनों का विकास हो।

हम समाज में प्रेम का भक्ति बाहुल्य देखते हैं। वह प्रेम सड़कों पर
 हमें दीख पड़ता है। परन्तु प्रेम इतना सस्ता और सुलभ पदार्थ
 है। प्रेम चेतना का सबसे कोमल उद्देग है, और उसका प्रकट स्वरूप
 है, जिसका प्रभाव जीवन के सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत
 स पर पड़ता है।

शरीर धारण के लिए हमें बहुत कष्ट भेनना पड़ता है। परन्तु
 ही से हम चरम धानंद की प्राप्ति भी प्राप्त कर सकते हैं। और
 न करे भला? जब हम सारे दिन कठोर परिश्रम करके मानसिक
 से कलात और दुश्चिन्नाओं से लड़े-से घर लौटें तो क्यों न नमं-
 मालिगन का मुख प्राप्त करें? शरीर-मुख की यह भासता कोई बुरी
 नहीं है। और मैं, मैंने तो मुख भेना नहीं, देना ही घपना ध्येय
 लिया है। यही भे-
 मसार की सफलता की कुञ्जी है। इसीने
 है। एक दत्त है उसका पति जो उससे घनि-

बर्ष नीच कुल सेता रहा, पर उसे भी बुद्ध देना चाहिए इस सम्बंध में सापेक्षाह रहा । और जब उसने मुझे पाया जिसका ध्येय मुझ सेना नहीं देना ही था, तो वह इस नई धनुमूनि को पाकर प्रापे में न रह सकी । उसका सारा शील, संकीच, निष्ठा घोषी में तिनके की भाँति उड़ गई, और वह समूची ही तन-मन से मुझमें समा गई ।

दिलीपकुमार राय

मैं समझता हूँ कि मैं तलवार की धार पर चल रहा हूँ। किसी भी क्षण मुझे उन खतरों का सामना करना पड़ सकता है जो जीवन-मरण की समस्या के कठिन क्षणों में घा उपस्थित होते हैं। ये तो जीवन की टेढ़ी चालें हैं, जिनमें ठोकर खाकर गिर पड़ने की संभावना होती ही है और आज दत्त ने खतरे की घंटी बजा दी है। वह कई दिन से घुट रहा था—वह मैं प्रत्यक्ष देख रहा था। 'चोर की हाथी में तिनका' वही बात है। मैं चोर तो हूँ ही। मैं उसकी विवाहिता पत्नी का जार हूँ। यद्यपि मैं यह बात स्वीकार करने से इन्कार करता हूँ कि मैंने उसे पथ-भ्रष्ट किया। मैं प्रथम ही स्वीकार कर चुका हूँ कि पहली ही दृष्टि में मैं उस पर भर मिटा था। मेरे मन में यह भावना उदय हुई थी कि वह मेरी है, मेरे लिये है। पर मैंने उसपर कभी भी यह भाव प्रकट न होने दिया; दत्त की मित्रता के नाने भी घोर रेखा के शील से भयभीत होकर भी। परन्तु फिर दुरभिसंधियां घाईं, जब बहू अपने पति के व्यवहार से अनन्वुष्ट हुईं, लौंभी घोर दुःखित हुईं। मैंने उसमें सहानुभूति का मार्ग प्रपन्नाया। घोर धीरे-धीरे चतुराई से उसकी खोज को जोष में घोर दुःख की बदला लेने की इच्छा में बदल दिया। प्रकट में मैं जहां उसकी प्रत्येक भावना से सहानुभूति रखना था वहां दत्त का भी परम हितैषी शुभ-चिंतक बनता था। पर सदैव मैंने उसके मन में दत्त के विरोधी भावों का बीज बपन किया।

दत्त उसपर अन्याय कर रहा है, वह असह्य है, अनैतिक है, अव्यवहार्य है—वही मैंने उसपर प्रकट किया। धीरे-धीरे उसके मन में दत्त के प्रति विरक्ति के भाव उत्पन्न हो गए। परन्तु यह यथेष्ट न था। उसके मन को मैं दत्त के प्रति घोर घृणा से भर देना चाहता था। उसके

हृदय में घनाह्र सेव था। दल के लिए—सपना जिगीने की लिए, जो उगना गति होना। वह एक जीवनी मर्जितना गरी थी। उच्चरति की निष्ठा उगमें थी। वेचन कोष, मीन और अवस्थेन ही से उगने मन में परगुण का प्रवेश हो गान्—देवी कङ्करोर और कंचन मन की स्त्री वह न थी। मुझे उगने प्यार की पारदर्शना थी—वेचन उगने मन को ही मैंने नहीं चाहा, मन को भी घनाना मैंने चाहा; और वह उग तक मन्मथ नहीं था जब तक कि मैं पूर्णरूपेण उगने मन की दल के प्रति पूजा और किर्ति से न भरूँ।

इसमें मुझे समय गगा। क्योंकि दल में वेचन एक ही वृत्ति की कि वह पारदर्शक व्यक्ति था। निम्नर वह सराब का अंगन करना था। पर वह अंगन तो मैं भी करना हूँ, परन्तु मैं सावधान पुरुष हूँ। दल भी यदि सावधान होना तो मुझे मरनना न मिलती।

परन्तु रेखा के बचने हुए दल पर दल की विन्ता उगन्न हुई है, जो स्वाभाविक ही है। रेखा से वह घनना प्राणम्य नहीं वा रहा है, विन्ता कि वह अम्यस्त है। वह मुझपर मन्देह नहीं करता है, इसीसे उन दिव उगने मुझसे रेखा के सम्बन्ध से बानें कीं। परन्तु मायद वह मुझसे मीधी रेखा की बानबीन करने का माहस नहीं कर सका। इसलिए उगने पहले माया का प्रसंग उठाया। उसने कहा :

“तुमने कभी भी पहले माया के सम्बन्ध में कोई निवाचन नहीं की थी। माया बहुत ही मन्दी स्त्री थी—फिर क्या कारण हुआ कि उसके तुम्हारा सम्बन्ध-विच्छेद हो गया ?”

उने पहले इस बान को हंसकर टाल देना चाहा। पर वह खोद खोद-पूछता रहा। मैंने कहा :

“बड़ी विचित्र और खबीली वस्तु है यह विवाह, जहा मनुष्य प्रेम करने और मारमसमर्पण करने को विवश हो जाता है। विवाह का अर्थ ही है एक असाधारण सम्बन्ध। हिन्दू-धर्मग्रन्थों में व रुद्र अर्षों में विवाह का अर्थ है—स्त्री-पुरुष का जन्म-जन्मान्तरो के लिए एक-दूसरे से अटूट सम्बन्ध।”

जन्म-जन्मान्तरो की बान सुनकर दल को हंसी आ गई। पर वह वह चिरप्रसिद्ध हंसी न थी जिसमें ठहारों के साथ अानन्द

बिखरता था। यह तो एक हत्ती-मूखी हंसी थी। उसने हंसकर कहा, "जन्म-जन्मांतर की बात थोड़े छोड़ो राम, इसी जन्म में निभाव हो जाए तो यनीमत है।"

मेरे कुछ नहने के प्रथम ही उसने कुछ गम्भीर होकर कहा, "माया ही की बात ले लो। यह न कोई नई-नवेली स्त्री है, न बेसमझ है। बड़ी सम्यक्षिष्ट मौख्त है वह; पर उसे ही बना गया, जो वह इस तरह चली गई?"

"इसका मैं इसके प्रतिरिक्त घोर क्या काररतु बता सकता हूँ कि वह माधुनिका है—पुरानी हिन्दू-परम्परा को नहीं मानती।"

"पुरानी हिन्दू-परम्परा क्या?"

"मैंने कहा न कि हिन्दू-धर्मानुशासन की दृष्टि से स्त्री एक बार विवाहित होकर जीवन-भर पति से विच्छेद नहीं कर सकती। यही नहीं, वह पति के मरने पर भी उसकी विषवा रहेगी, और यह विश्वास रखेगी कि जब उसकी मृत्यु होगी तो स्वर्ग या पतिलोक में उसे वही पति मिलेगा, जन्म-जन्मान्तरों से वही उसका पति होता थाया है।"

इस बार दत्त को हंसी नहीं आई। उसने ठनिक गम्भीर होकर कहा, "तुम भी क्या इस झूठी बात पर विश्वास करते हो राम?"

मैंने हंसकर कहा, "मैं तो स्त्री हूँ नहीं, इसलिए मेरे विश्वास-अविश्वास करने से क्या होता है मला? पर यह बात मैं जरूर कहूंगा कि स्त्री को यदि ऐसा ही विश्वास रहे तो मैं उसे पसन्द करूँगा।"

"क्यों पसन्द करोगे तुम इस झूठी बात को?"

"झूठी-सच्ची बात से हमें क्या मतलब है। हमें तो वही जान पसंद आती है जो हमारे लाभ की होती है। मैं तो इस विश्वास की धगली किस्म को भी पसन्द करता हूँ।"

"धगली किस्म कौन-सी?"

"यह कि विवाह के बाद हिन्दू पति वा स्त्री पर एकान्त स्वामित्व हो जाता है। और पति मृत् हो वा जीवित, स्त्री बान्धत हो वा विवाहिता, हर हालत में उसे मन, वचन, धर्म से उसी पति के सर्वथा अनुबधिन, अनुप्राणित और पारम्पित रहना पड़ेगा।"

"और पति? क्या पति पत्नी के प्रति अनुबन्धित नहीं होगा?"

“जी नहीं, हिन्दूधर्म पति को स्त्री के प्रति अनुबन्धित नहीं करता। हिन्दू-धर्मानुबन्धन में पति एक या घनेक इसी प्रकार ने पूर्णानुबन्धित पत्नियां रखने हुए भी सर्वथा स्वतन्त्र रूप में अन्य वैध या धर्मधर्म-निगत पत्नियां बिना पत्नी की स्वीकृति के रख सकता है। यहाँ तक कि वह वैध या धर्मधर्मधारिणी स्त्रियों से भी मुक्त सहवास कर सकता है।”

“बाहिष्कृत बात है ! धार्मिक की स्त्रियां बना यह सब स्वीकार कर सकती हैं ? और सब तो कानून भी ऐसे बन गए हैं कि स्त्रियों पर कोई ऐसा दबाव नहीं डाला जा सकता। और वे जब चाहें तभी विच्छेद कर सकती हैं।”

“तो बस, बस कानून की ही करामान में माया ने तनाक दे दिया और चली गई।”

“लेकिन बाईस वर्ष के साम्राज्य का भंग करके ?”

“बीस बरस की जवान कुमारी लड़की को भी छोड़कर। जैसा चमत्कार रहा मिस्टर दत्त, कि बेटी ने मा का विवाह अपनी मांओं में देखा !”

“लेकिन क्या तुम कह सकते हो—इस मामले में तुम निर्दोष हो ?”

“दोष-निर्दोष की भी धलन-धलन श्याम्भा है। दोष या धरारा जैसा हलका-भारी होता है—दण्ड भी वैसा ही होता है। उगर्ती उठने के धरारा में फाँसी नहीं दी जाती।”

दत्त उन समय शायद अपने दुःख से दुःखित थे, इसलिए उन्होंने मेरे इन शब्दों से मेरे मनस्वाप को देख लिया। उन्होंने महानुक्तिः स्वर में कहा :

“तुमने यदि मुझमें कहा होना तो शायद मैं तुम्हारी महारत करता—उन्हें समझाता-बुझाता।”

“यह सब काम तो मैंने भी किया।”

“तो क्या कुछ ऐसे गम्भीर कारण या उपस्थित हुए कि तुम सफलता नहीं मिली ?”

धर मैं क्या बतलव देता। मैंने कहा, “मिस्टर दत्त, बहुत-सी बातें जो कही नहीं जा सकतीं। बूढ़-बूढ़ तालाब भरता है, उरा-उरान-प्रतिकूल बातें बहुत बढ़ती बन जाती हैं। धारम्य में जोमान कल्पना

घोर भावुक प्रवृत्तियों को पूंजी बनाकर स्त्री-पुरुष में प्रेम-व्यापार चलता है। पर बहुधा उन कल्पनाओं घोर प्रवृत्तियों के तार बीच ही में टूट जाते हैं तो वह प्रेम का लेन-देन ही बेवत मन्द नहीं हो जाता, बिरक्ति घोर घृणा की बीछारों को भी सहन करना पड़ता है; घोर उनसे घबराकर स्त्री-पुरुष में जो साहसी होता है वह भाग सड़ा होता है, जो कम साहसी होता है वह मर मिटता है। घोर सब तो यह है कि प्रेम का जीवन बड़ा जटिल है। सम्भव है, पत्थर-युग में जब मम्पना का पारंभ या प्रेम सरल रहा हो, पर जब सम्भ्रता के विज्ञान ने इसे जटिल बना दिया है। घोर प्रबं मनुष्य भाषानी से उठके भार को सहन नहीं कर सकता।”

“क्या तुम समझने हो राय, कि स्त्रियों की इतनी स्वाधीनता समाज के लिए हिनकर है? मैं पुराने युग की स्त्रियों का समर्थन नहीं करता, पर साधारण कारण से प्रति-पत्नी का विश्लेषण क्या उचित है? फिर यह भी तो सम्भव है कि जो कुछ समझा गया है वह भ्रमपूर्ण भी हो सकता है।”

“बहुधा होता भी तो ऐसा ही है। परन्तु धात्र की स्त्री को हम वाचकर नहीं रख सकते।”

“परन्तु इन तरह तो जीवन ही अस्त-व्यस्त हो जाएगा, समाज की एकनिष्ठता अन्त हो जाएगी।”

“हो जाए, पर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य सबसे बड़ी वस्तु है। यह धात्र के युग की सबसे बड़ी मांग है।”

“क्या तुम कह सकते हो राय, कि स्त्री जिस बात से खुश हो सकती है? तुम तो बार्डिंग वर्थ के तनुर्विकार धादमी हो?” उसने फिर उसी प्रकार कीकी हसी हसकर कहा।

मैंने कहा, “इसका तो कोई एक नियम नहीं प्रतीत होता, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री-पुरुष की एकता के बीच शरीर की प्रपेक्षा मन की महत्ता अधिक है। मानसिक धोम उनकी एकांत एकता में शायक है। शिक्षा से मानसिक स्तर सब स्त्री-पुरुष दोनों ही पर ऊपर उठ गया है। इसलिए मनोविचार घोर मनस्तुष्टि शरीर-भुष्टि में अधिक महत्त्व रखने लगी है।”

“शायद असम्भव युग में ऐसा न था।”

“शायद न था, शायद था—कुछ ठीक नहीं कह सकता, पर एक बात कह सकता हूँ कि कुछ बातें हैं जो स्त्री-पुरुष दोनों को एक-दूसरे के प्रति आकर्षित करती हैं। इनमें मानसिक कोमलता और आत्मार्पण की भावना सर्वोपरि है।”

“फिर भी कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती। बहुत स्त्रियाँ अयोग्य, निर्दय, दुराचारी पतियों में भी प्रसन्न और सन्तुष्ट रहती हैं। बहुत सद्गुणों को पसन्द करती हैं। बहूतों को आदर्श भी प्रिय नहीं होता। पर कुछ पुरुष चमत्कारिक होने हैं, जो मूट स्त्रियों के प्रिय बन जाते हैं। उन पुरुषों की मूर्खतापूर्ण चेष्टा पर भी स्त्रियाँ प्रसन्न हो उठती हैं।”

“क्या तुम प्रेम के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानते हो राय ?”

मुझे दत्त के इस प्रश्न पर अनायास ही हँसी आ गई। यह एक विद्वान, स्वस्थ, तरल पति का प्रश्न था। मैंने कहा :

“क्यों ? आपने क्या कोई अच्छी फिल्म यात्रकल नहीं देखी है ? प्रेम की बहुत-सी अच्छी जानकारी उनमें होती है।”

“नहीं, नहीं, मजाक की बात नहीं ! सचमुच ही मैं तुमसे पूछना हूँ कि क्या स्त्रियाँ प्रेम से भी खूश नहीं होतीं ?”

“लेकिन आप मेरा उत्तर सुनकर मुझे केवकूक बनाएँ !”

“नहीं, नहीं, तुम कहो भी तो।”

“खैर, तो मुनिए, पार्श्विक प्रवृत्ति ही प्रेम है।”

“पार्श्विक प्रवृत्ति से प्रेम का क्या सम्बन्ध है ?”

“जस समक सीजिए, दोनों एक ही हैं। आस कर औरत के मामले में।”

“धरे भाई, तुम तो पहेलियाँ बुझाने लगे। साफ बात क्यों नहीं कहते !”

“आप साफ ही सुनना चाहते हैं तो मुनिए। स्त्रियाँ कोरे मातृक पसन्द नहीं करती। वे तो उसी प्रेम को पसन्द करती हैं जिसमें भीषण आक्रमण छिपा हो।”

सुनकर दत्त चुप हो गया। वह किसी गम्भीर चिन्ता में

डूब गया। मेरा हृदय पड़कने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब कोई बख्शपास मेरे ऊपर होने वाला है। परन्तु उसने दांता-संयत स्वर में कहा, "क्या सचमुच धीरों इस कदर कामुक होती हैं?"

"क्या आपने सुना नहीं, घोरत में पुरुष से घाठ गुनी काम की भूल होती है?"

"हां, गुना तो है। पर अपने घाठ बरस के वैवाहिक जीवन में मैंने यह बात प्रत्यक्ष नहीं देखी। पर तुम सायद ठीक कहते हो, क्योंकि तुम्हारा अनुभव चाईस बरस का है। लेकिन राय, यदि माया के चले जाने का यही कारण था तो तुमने अपने इलाज कराने में क्यों लापरवाही की?"

मेरा मुह धर्म से लाल हो गया, और मुझसे इसका जवाब देते न बना। यद्यपि यह एक धाकस्मिक और सहन सहानुभूति का ही प्रदन था, पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे दत्त ने मेरे मुह पर एक कटारा लमाचा मारा हो। मैं धभी कुछ जवाब सोच ही रहा था कि दत्त ने कहा, "राय, तुम्हारी यह व्याख्या गलत भी हो सकती है।"

मेरा मन हो रहा था कि मैं अब यहाँ से भाग चलूँ। न जाने प्रदोत्तर कौन-सा दख पवड़े और मैं सन्देह का पात्र बन जाऊँ। यह स्पष्ट था कि इस समय दत्त की नजर में रेखा का विपरीत उदासीन आचरण विरक रहा था और उसी भाव-शक्त्य में प्रदन कर रहा था। अब मैंने भी गम्भीर स्वर में कहा, "हो सकता है कि मेरी यह प्रेम-व्याख्या गलत हो, क्योंकि अन्ततः मैं एक विफल पति हूँ।" दत्त ने एक गहरी सास ली और कहा, "राय, ऐसा प्रतीत होता है कि सभी पति विफल पति होने हैं। किसी स्त्री का पति होना एक घाटे का सौदा ही है।"

इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी सहानुभूति से मेरा हाथ पकड़कर कहा, "भाई राय, विश्वास करो, तुम्हारे लिए मैं बहुत दुःखित हूँ। समझ रहा हूँ कि तुमने माया के वियोग को सहन करने में अपरिसीम धैर्य का परिचय दिया है। मैं अपनी यह सकता हूँ कि कहीं यदि मुझे रेखा को इस तरह छोना पड़ जाए तो मैं जिन्दा न रह सकूँगा।" उसने मुझे नमस्कार कहा। मैंने कुछ जवाब न देने ही में कुशल समझी और प्रतिनमस्कार करने बला माया।

सुनीलदत्त

बड़ी भयानक बात कही राय ने कि पारमार्थिक प्रवृत्ति ही प्रेम है। परन्तु यह कैसे माना जा सकता है ? राय ने इसकी व्याख्या भी की। उनमें कहा—श्रिया उसी प्रेम को पसन्द करती है जिसमें काम-वासना का भीषण आक्रमण निहित हो। परन्तु मैं इस बात की तरह में जाना चाहता हूँ। स्त्री-पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध पहले प्रेम का सम्बन्ध होता है, या काम का सम्बन्ध ? निस्सन्देह प्रेम का सम्बन्ध होता है। परन्तु उनमें काम-वासना नहीं दिखी रहती है, यह नहीं कहा जा सकता। रेखा को जब मैंने विवाह में पूर्व देखा तो मन में कौसी एक गर्मी उत्पन्न हुई जैसे ज्वर चढ़ जाया हो ! किन्तु रातों तक मैंने उसकी कल्पना-भूति का ध्यान किया ! उस ध्यान में किन्तु प्रेम का धीरे-धीरे किन्तु काम, यह मैं नहीं कह सकता, शयन मुझे कहना चाहिए, काम ही अधिक था।

प्रेम तो देना है। जो किन्तु अधिक देता है वह उतना ही अधिक प्रेमी है। परन्तु काम तो एक वासना है, वह लेने की प्रवृत्ति प्रकृत है। बचल करता हूँ कि जब-जब मैंने रेखा का ध्यान किया तो मन में यही हुआ कि उसे मैं प्राप्त कर लू, आत्मशान्ति कर लू, अपने में समेट लूँ। यह देना कहा हुआ ! लेना ही तो हुआ। इसलिए यह काम ही था, प्रेम नहीं। राय ने ठीक कहा—प्रेम एक पारमार्थिक प्रवृत्ति है। क्या रेखा की स्मृति से मेरे मन में पारमार्थिक उत्तेजना नहीं पैदा हुई ? पारमार्थिक प्रवृत्तियों ने मुझे नहीं झरझोर डाला ?

इसके बाद जब मैंने रेखा को प्राप्त कर लिया, उसका मन भी, मन भी मेरा ही गया—तब क्या प्रेम प्रवृत्ति था ? न, न, प्रेम नहीं काम प्रवृत्ति था। प्रेम तो उसका बाहन था। कामदेव साक्षात् प्रेम पर मन्त्रों की उपासना था। धीरे-धीरे कामदेव जब तक अपना अर्घ्य-वाद्य रेखा के स्वीकार

से न प्राप्त कर ले तब तक उसे विवश किए रहना था। और वह
 मद्भुत था यह प्रेम और काम का समुक्त मोर्चा।

पर तब मैंने इसका महत्त्व समझा ही न था। बहाना चाहिए
 समझने का मुझे होना था न धवकान। मैं तो सचमुच एक पाश्चात्य
 था। सब है, सब है, भिन्नलिपी का यह स्वभाव है। वह भिन्नलिपी का
 विरोधी अस्तित्व है। और उसका सम्मिलन दो वर्तनों के टकरा जाने के
 समान दुर्घट है। उस समय मैंने यह भीषण सत्य नहीं समझा था
 मात्र समझ रहा हूँ।

परन्तु वह पाश्चातिक प्रवृत्ति अब सी क्यों गई? क्या प्रेम का र
 मूल गया? बदनी जान तो मैं बह सकता हूँ। मेरे हृदय में प्रेम का समु
 उमड़ रहा है—केवल रेखा के लिए। परन्तु उस प्रेम में वह पाश्चातिक
 प्रवृत्ति क्यों नहीं रही है? रेखा को देखकर, खूबर अब घरीर में फुलने
 क्यों नहीं घाती है? मून गर्म क्यों नहीं होता है? पात्रमण करने का
 पावेस क्यों नहीं उत्पन्न हो जाता है? और यदि कभी-नभार हो
 भी है, तो रेखा प्रत्याक्रमण क्यों नहीं करती? वह तो विट्टी हो गई है
 भला इकतरका मट्टाई भी नहीं होनी है! बिल्ली जीवित बूढ़े पर ह
 तो भाट्टा मारती है। और छलांगे मारते हिरन ही पर तो उद्घात मरत
 है। शिकार की छटाटाहट ही तो शिकार की जान है। वही मुँद क
 भी शिकार किया जाता है?

रेखा का घरीर जो रहा है। पर उसका नारी-भाव मर चुका है
 या सो रहा है, या क्या हो गया है, यह मैं नहीं जान पाता। पहले
 कह चुका हूँ कि वह बीमार नहीं है। कितनी बार मन में र्शना उठनी
 कि वही वह बेवफा तो नहीं है? भला रेखा जैसी स्त्री भी नहीं बेवफ
 हो सकती है? नहीं, नहीं, नहीं शो सजाती। फिर उसे ऐसे धवसर क
 मिलने हैं! बस राय से उसकी पनिष्ठता है। पर राय पर उसकी भल
 क्या पाशक्ति हो सकती है! धववा दुनिया में सब कुछ हो सकता है
 हे भगवान! यह मैं क्या सोचने लगा! छि., छि.। मगर सब बातों प
 विचार करने में क्या हर्ज है! राय तो बहुत दिन से हमारे घर आता
 —रेखा के ब्याह के प्रथम से ही। जब मेरा ब्याह नहीं हुआ था,
 उसके घर जाता था। माया मुझसे खूबकर मिलनी, हंसती, खोलनी थी

न मेरे मन में कुछ विचार उत्पन्न हुआ न उसके । हम दोनों शुद्ध मित्र-भाव से रहने रहे । उमी प्रकार अब राय मेरे यहाँ रेखा से मिलना है, हमना-बोलता है । आज के युग में भला घोरत को कहीं बांधकर रखा जा सकता है ? फिर रेखा जैसी पत्नी पर मैं भविष्यवास्त करूँ, या राय जैसे मित्र पर सदेह करूँ, तो क्या यह उचित होगा ?

फिर भी एक बात मैं देखना हूँ । अब रेखा राय से भी तो पहले की भाँति नहीं मिलती, हँसती, बोलती । उसके घाने पर या तो चुपचाप कोई बुनाई या पुस्तक लेकर बैठ जाती है, या टल जाती है । और राय भी अब उससे बात नहीं करता । क्या उसकी राय से भी सटक गई है ? परन्तु ऐसी कोई बात मुझे तो मान्य नहीं । वह रेखा सा रही है । मैं रेखा ही से पूछना हूँ । मन ही मन बुझने से क्या लाभ ?

“बैठो रेखा, बैठो, कितनी सुन्दर सन्ध्या है ! मैं सोच रहा हूँ, राय सा जाए तो चलकर कोई अच्छी-सी विक्रम देखी जाए । कुछ मान्य है तुम्हें, आजकल कोई अच्छी विक्रम कही लगी है ?”

“मुझे तो नहीं मान्य ।”

“लेकिन राय को जरूर मान्य होगा । वह कोई अच्छी विक्रम छोड़ता नहीं है । न हो, चलो, उसे उसको घर से लेने चलें ।”

“उसको साथ लेना कोई जरूरी है ?”

“नहीं, यह बात नहीं । माया चली गई, बेचारा दुःखी रहना है ।”

“उसने दुःख से तुम विशेष दुःखी प्रतीत होने हो ।”

“दुःख की बात ही है । फर्क करो तुम्हीं मुझे छोड़कर चली जापो तो मैं क्या करूँगा, जानती हो ?”

“क्या करोगे ?”

“भान दे दूंगा । गोपी मार खूँगा ।”

“राय ने तो गोपी नहीं मारी, जान नहीं दो ।”

“क्या मरुजान है राय । पर मैं तुम्हारे बिना न रह सकूँगा रेखा ।”

“राय भी, सम्भव है, माया से ऐसा ही कहने रहे हों !”

“लेकिन मैं तो तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ रेखा ।”

“गय शायद माया को प्यार नहीं करते थे !”

“शायद नहीं करते ये।”

“तो चाईस मरस तक क्या करते रहे ? दोनों का संसार कैसे चलता रहा ? बिना प्यार के भी कहीं भीरन-मर्दे रह सकते हैं ?”

“नहीं रह सकते रेखा, इन दिनों मैं इस बात को खास तौर पर देख रहा हूँ।”

“इन दिनों क्यों ?”

“पता नहीं, तुम्हें क्या हो गया है। गुमगुम रहती हो। पहले की तरह हंसते हुए तुम्हारे होठ फड़कते नहीं। तुम्हारे गालों में गड़े पड़ते नहीं। घाँसों में खमक घाती नहीं। जब पास घाती हो तो पास घाते घाते रह जाती हो। तुम्हें देखकर मेरा दिल उछलता है, पर जैसे कोई उसे दबोच डालता है। क्या तुम इन सब परिवर्तनों को नहीं देखती हो ?”

“नहीं, मैं तो नहीं देखती।”

“तो तुम कहना चाहती हो, तुम बही हो जो पहले थी, जब क्या कर चाई थी ?”

“तुम क्या समझते हो, मैं बदल गई हूँ ?”

“जहर बदल गई हो, बरना इतनी बातचीत होने पर भी तुम नहीं खडी रहती ? मेरे गले से न मूक जाती ? तीन दर्जन चुम्बन तड़ाकत धंकिता न कर देती ?”

‘तुम समझते हो, मैं कहीं म्याह की नयेली-बनी रहूँ ?’

“न न, मैं चाहता हूँ तुम आज की मेरी प्राणप्रिया पत्नी बनो। मैं तुम्हें जो म्याह के बाद लेना सिखाया है उसे अधिक से अधिक लो जितना प्यार, कितना सुख भंजलि मे लिए मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। कहते हैं : लो—लो—लो। लेकिन तुम हो कि घाल उठाकर देखतीं तक नहीं क्या इतने ही में तुम्हारी मुझसे वृप्ति हो गई ? कहाँ गई तुम्हारी बाधाकुल-व्याकुल-भातुर मूर्ति, उन्मुख प्यार की विरकती हुई गुडिया हँसो के फूल खेरेली हुई, नजर के तीर चलाती हुई, शरीर की सुपन फैलाती हुई जो तुम घाती थीं—वह तुम अब कहाँ हो ?”

“मैं तो वही हूँ। तुम्हारी समझ का फेर है।”

“घोफ, जितना ठण्डा जवाब है ! मेरी प्यारी रेखा, मेरे पास

वाणी मेरी शीत से बड़ी है। जैसे कपड़ों में सुकीर्ण सुखवस्त्रों की आवश्यकता
करा। 'सुखें क्या चाहिए ? मैं सुखीने लिए क्या करूँ ?' सुखें क्या
दुःख है ?'

'सुखें सुख भी दुःख नहीं है।'

'कैसे ही दुःख जगत् में है, वेदा, वेदा कोई धर्मशास्त्र ही तो बनाये,
मैं सुखमें लक्ष्य पाऊँ।'

'सुख नामही ही ज्ञान का अन्तर्गत बना रहे ही।'

'तो क्या ही क्या बात है ?'

'सुख बात ही तो कहुँ।'

'सम्पत्ति, मेरी ज्ञान छोड़ो, धर्मशास्त्र सुख प्राप्त ही भी कटी-कटी
रहती ही।'

'तो क्या करूँ मैं ?'

'पढ़ते जैसे हमारी-बोली ही, कैसे ही हमारे-बोली।'

'हमारे धर्मशास्त्रों ही हमारे। कोई ज्ञान हमारे ही बोली ही।'

'पढ़ते ही ज्ञान-ज्ञान पर हमारे धर्मशास्त्रों ही, ज्ञान-ज्ञान में ज्ञान निरन्तर ही।'

'तो धर्म नहीं निरन्तर ही तो क्या करूँ ? उदरभोग ही ?'

'नहीं, उदरभोग ही उदरभोग नहीं है देखा। अब हमारे धर्मशास्त्रों ही
हमारे चाहिए।'

न जाने कहीं में एक धर्मशास्त्र का धर्मशास्त्र उदरभोग धर्मशास्त्रों में
उदरभोग ही देखा। देखा ने कहा, 'निरन्तर देखा ही धर्मशास्त्रों ही, धर्मशास्त्रों ही
धर्मशास्त्रों ही धर्मशास्त्रों ही।'

'नहीं, धर्मशास्त्रों ही धर्मशास्त्रों ही धर्मशास्त्रों ही।'

'तो ही रहो।' इनका कहकर देखा चली गई, धर्मशास्त्रों ही देखा
सगा कि कोई नम कट गई ही धर्मशास्त्रों ही धर्मशास्त्रों ही धर्मशास्त्रों ही।

लीलावती

मिसेज दत्त भव रोज-रोज ही यहाँ आने लगी हैं। वह मुझे मर्यादा नहीं लगता। मेरे साथ वे बहुत प्यार दिखाती हैं। उनकी मीठी बातें, सुन-हरी मुस्कान और सुन्दर शरीर मुझे बहुत भाता है। परन्तु न जाने क्यों उससे मुझे आनन्द नहीं आता। उनके आने पर मुझे एक प्रकार की हसी होती है, फिर भी मन में मँला-मँला-सा कुछ लगता है। पापा भव समय से पहले आफिस से आते हैं। उनका कहना है कि उनकी तबियत खराब रहने लगी है, इसी से। पर मैं जानती हूँ, यह सब बहाना है—कोरा बहाना। वे मिसेज दत्त से मिलने के लिए ही आते हैं। पहले मिसेज दत्त मुझसे भूव बात करती थी, प्यार बताती थी, पर अब तो वे मेरी तरफ देखकर मुस्कराती हुई सीधी ऊपर पापा के क्षयगृह में चली जाती हैं। बहुधा पापा उनसे पहले ही घर आ जाते हैं, पर कभी ऐसा भी होता है कि वे नहीं आ पाते तो भी मिसेज दत्त सीधी ऊपर चली जाती हैं। मेरे पास बैठती नहीं, वार्नें भी नहीं करती। न जाने क्यों, उनका इस तरह मुझे देखकर मुस्कराना और चुपचाप ऊपर चला जाना मुझे मर्यादा नहीं लगता। अब तो जैसे मेरा मन भी उनसे बात करने को नहीं करता। जब वे मुस्कराकर मेरी ओर देखती हैं तो मुझे मासूम होना है कि वे मुझसे प्रश्न कर रही हैं कि क्या पापा ऊपर हैं, और मैं कठपुतली की भाँति सकेत से ही कह देती हूँ कि हैं, चलो जाओ। और वे जल्दी-जल्दी कदम उठाकर चली जाती हैं। चाहता हूँ कि मेरा-उनका सामना न हो। वे भी नायब यही चाहती हैं। इसीसे मैं जब उनके आने का वक्त होता है तो टल जाती हूँ—या तो अपने पढ़ने के कमरे में दरवाजा भीतर से बंद करके बैठ जाती हूँ, या किसी सहेली के यहाँ चली जाती हूँ। सिर्फ घोंफर रह जाता है। वह उन्हें मेम साहब

ही रहने देते हैं। ममी भी तो मुझे नहीं छोड़ती। कभी-कभी तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है, वही मेरा घर है। वहाँ से घाने को मन ही नहीं करता। वहाँ से लौटकर यहाँ बहुत सूना-सूना लगता है। घौर फिर ममी के पास जाने को मन होता है। मन को रोकती हूँ; बहुत रोकती हूँ। तब रोने लगती हूँ घौर फिर खली जाती हूँ।

सचमुच वही तो असली ममी हैं। हमारे घर से खली गई हैं तो क्या हुआ ! लेकिन ये भिमेश दत्त मला ममी कैसे बन सकती हैं ! यह प्यार इनम कहाँ है ! नहीं, नहीं, ये ममी नहीं हैं।

मैंने ममी से भिमेश दत्त के यहाँ घाने-जाने की बात भी कह दी है। वे जाती हैं। सीधी पापा के शयनागार में चली जाती हैं। मुझसे बात तक नहीं करती हैं, यह भी कह दी है। उनकी आशों में मुझे यही भावता है कि उनके घाने के समय में घर में न रहूँ तो ही अच्छा है, यह भी मैंने कह दी है। ममी सुनकर चुन हो जाती हैं। उनकी नज़र में कैसा कुछ दर्द भर जाता है, देख नहीं सकती मैं। घौर कभी-कभी पूछ बैठती हूँ—ममी, इन बातों का आखिर मतीजा क्या होगा ? मैंने एक-दो बार ममी से पूछा—क्या मैं उनसे कह दूँ कि वे मेरे घर न घाया करें ? या पापा ही से कह दूँ कि उन्हें न बुलाया करें—तो ममी ने मना कर दिया। एक बार तो यह भी उन्होंने कहा कि मैं वहीं उनके पास घा रहूँ। मेरा मन तो यह चाहता है, पर पापा को छोड़कर कैसे रह सकती हूँ ! फिर वह तो मेरा घर है नहीं।

उस दिन न जाने क्यों ममी घपना गुस्सा न रोक सहीं। घों वे, जब मैं उनके पास जाती हूँ, गुस्सा नहीं होती हूँ। पर उस दिन जब मैंने उनसे तमाम दिन पापा के शयनागार में रहने की बात कही, तो...तो वे निलमिला उठीं। उनके चेहरे पर ऐसा एक कठोर भाव घा गया जैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था। घौर अब मैं चलने लगी तो उन्होंने कहा, "बेवो, मेरा एक काम कर दोगी घेटी ?"

मैंने कहा, "कहो माँ।"

जब मैं बहुत घुस होती हूँ तो ममी को मा कहती हूँ। मैंने कहा, "कहो मा।"

उन्होंने मुझे घपने सीने में छिपा लिया कि मैं उनके आसू न देख

मकू घोर कहा, "बेटी, मेरा एक फोटो बड़ा मोने के कमरे में टंगा हुआ है, मुझे मा दे।" घोर मीने बड़ फोटो उन्हें मा दिया।

पापा ने मुझसे पूछा, 'बड़ फोटो क्या हुआ?' तो मीने बता दिया कि ममी ने माया मा, दे पाई हूँ।

पापा कुछ बोले नहीं, चुपचाप चले गए। मायद नाराज हो गए। पापा भी तो मुझसे कम बात करने हैं। वे चाहते हैं कि जब मिसेज दत्त जाएं तो मैं घर में न रहूँ। मैं भी हकीमत में यही चाहती हूँ। पहले ममी जब यहाँ थीं तो उन्होंने कहा था कि मैं होस्टल में जा रहूँ, घोर मीने इन्कार कर दिया था; पर अब तो मैं स्वयं चाहती हूँ। समय बात यह है कि मैं न तो मिसेज दत्त का पापा के शयनागार पर इस तरह दखल जमाना देख सकती हूँ, न रोज-रोज उनका घाना बदलाने कर सकती हूँ।

मैं मन ही मन घुटनी रहती हूँ। हमसे मेरी स्टडी में भी हर्ष होगा है। ममी से जब-जब मिसेज दत्त की बात मीने बड़ी, तब-तब वे चुप रहीं भ्रष्टा-बुरा कुछ नहीं कहा। पर मैं जानती हूँ कि यदि मैं मिसेज दत्त को अपमानित करूँ तो ममी खुन होगी। बहुत खराब औरत हैं मिसेज दत्त।

सुनीलदल

काम-विज्ञान की कुछ पुस्तकें खरीद लाया हूँ। उनका अध्ययन कर रहा हूँ। राय ने जो यह बात कही है कि स्त्रियाँ उसी प्रेम के बशीभूत होती हैं जिसमें कामावेग का भीषण पार्श्विक आक्रमण निहित होता है, इसीसे मैं इस विचित्र विषय का सांगोपांग अध्ययन करूँगा। जब यह विषय जीवन के मुख-दुःख के इतने निकट है, तो यह कालेजों में क्यों नहीं पढ़ाया जाता ! इसपर तो डाक्टरैट करना चाहिए। बड़ा विचित्र है यह विषय। काम-विज्ञान स्त्रियों की और पुरुषों की अलग-अलग जातियाँ बयान करता है। ये जातियाँ सामाजिक स्तर पर नहीं होतीं—उन घोर मन की भिन्नता के आधार पर होती हैं। पतली-सुबली, लम्बे शरीर की फुनीली स्त्री, जिसकी रंगतिपा और मध्य शरीर भी लम्बा हो, जो लाल फूल और लाल रंग के वस्त्र पसन्द करे, जोड़ी हो, शरीर पर नीली नसेँ चमकती हों, शरीर के नीचे का भाग लम्बा हो, स्मर-मन्दिर पर गहन रोमावली हो, रतिबल शारगन्धि हो, शीघ्र वृष्ट होनेवाली हो, शरीर गर्म रहता हो, न कम न अत्यधिक खाती हो, पित्त प्रकृति की हो, सुपलखोरी की आदत हो, मलिनचित्त हो, स्वर गधे के समान हो—बहु स्त्री शक्तिनी है। मेरी रेखा शक्तिनी है, न हस्तिनी है। हस्तिनी स्त्री बदन में भारी, चाल में मही, कद में ऊँची होती है। धेहरा व उग-नियाँ उसकी मोटी होती हैं, गर्दन छोटी और मोटी होती है। बाल भूरे होने हैं, स्वभाव की बटु होती है, शरीर से हाथी की मद-गन्ध आती है। होंठ बहुत मोटे, नीचे का होंठ लटकता हुआ, जोड़ी, बटुभाषिणी, कठिनाई से वृष्ट होती है। भला मेरी रेखा ऐसी बड़ा है !

एक स्त्री विशणी होती है—बाध उसकी मन की सुभाती है, कद मध्यम होता है। जपनस्थल विशाल और शरीर दुबला-पतला होता है।

होठ भरे हुए, काक खंभा, तीन रेखाओं वाला कण्ठ, चश्मे के समान कठ-स्वर, ललित कलाओं में रुचि, रोम कम, चंचल स्वभाव, चन्द्र दृष्टि, बनाब-शृङ्गार में रुचि । यह चित्रणों के लक्षण हैं । रेखा चित्रणों की नहीं है । वह पद्मिनी है । पद्मिनी के लक्षण उममें मिलते हैं । पद्मिनी स्त्री कमल के समान कोमलांगी, झरोर और रतिजल में दिव्यगन्ध, पण्डित हरिणों के समान पांखें, नेत्रों के किनारे लाल, शीतल-में गोल डरोर, तिल के फूल समान नाभिका, धड़ावती, सनज्या, कमल पुष्प के समान मुन्दर कानिकानी, चमकवर्णों, छरहरे गरीरवाली, जिसकी धान रात-हमिनी की भांति हो, जिसके उदर में चित्रणों परती हो, कलहंन के समान जिसकी बाणों मधुर हो, तन-मन में पवित्र, माक-शुद्ध रहनेवाली, मानिनी सज्यावती, अन्यभाषिणी, श्वेत रंग के फूलों को पसन्द करने वाली स्त्री पद्मिनी जानि की स्त्री है ।

कहा है, कामदेव के पांच बाण हैं—पकार, इकार, उकार, एकार, ओकार । कर्मणः इनके लक्ष्य हैं—हृदय, वश, नयन, मन्त्रक और मुख-स्थान । इन कर्मस्वानों पर नयनरूप धनुष को तानकर दृष्टिकर बाण-निशेच करने से स्त्री बनीभूत हो जाती है । अनिभूत स्त्री को धनुषरूप करना, धनुषरूप स्त्री को प्रेमी-धनुरागिनी बनाना और धनुरागिनी-धनुरक्ता से रति-मानन्द की प्राप्ति करना—यही कामनास्य का पूरा विषय है । ऊंचे तान पर से गिरती हुई निशेच की तरफ जयधारा के समान इस प्रवाही समार में सार पदार्थ कामानन्द है, और समूर्ण नन्द, हास्य, हस्य, रस, मन्त्रादि कामना-समूह उसके अधीन हैं । बसा-नन्द के समान उम बहान धानन्द की कोई मन्दबुद्धि, मुरम काम-कलाओं की विधिचला को न जानन वाला कोई मूर्ख तिस प्रकार प्राण कर सकता है !

मैंने स्त्रियों की प्राप्ति की चर्चा की है । अन्धक प्राप्ति की स्त्री का वृषक स्वभाव होगा है । परन्तु धानु की दृष्टि से बाणा, लपगी, प्रीति के भिन्न-भिन्न गुण होने हैं, फिर काम-अवृत्ति के भाव हैं, मीमा-कनार्थ धारि इतिव है । इन सबको न जाननवाला रतिविद्या में मूर्ख पुष्प के बीजन को प्राण करते भी प्राण नहीं कर पाता है । तब नो प्राण करते भी प्राण नहीं दिया है । मैं रतिकला में मु

है।

हिन्दू-धर्मशास्त्र, दयानन्द, टाल्स्टाय, गांधी बड़ी कडाई से कहते हैं कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध सिर्फ सन्तानोत्पत्ति के लिए ही होना चाहिए इसलिये पुरुष को ऋतुकालाभिगामी होना चाहिए। सत्तार के सभी नीतिवान पुरुष यही कहते हैं। पर काम-विज्ञान कहता है कि सहवास का प्रश्न केवल नीति या धर्म का ही प्रश्न नहीं है। वह स्वास्थ्य का, विज्ञान का और जीवन के प्राकृतिक विकास का प्रश्न है। मैंने भी इस सच्चाई पर विचार किया है, और इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ कि सहवास का मुख्य उद्देश्य विभिन्नलैंगीय असाधारण अानन्द-प्राप्ति है, जिससे न केवल स्वास्थ्य और जीवन को ही उन्नति मिलती है, प्रत्युत आत्मिक प्रदुर्बलना भी प्राप्त होती है। सहवास-सम्बन्धी मामलों में प्रतिबन्ध करने का यदि किसीको अधिकार है तो केवल चिकित्सक को, जो एक-मात्र इसी कारण से स्त्री-पुरुषों के सहवास पर प्रतिबन्ध लगा सकता है या उसे सीमित कर सकता है कि वह जब यह देखे कि उससे स्त्री या पुरुष के स्वास्थ्य पर खतरा है। और यह बात तो सर्वथा गलत है कि सहवास हर हालत में स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।

काम-विज्ञान की ये पुस्तकें तो ठोस आधारों पर यह कहती हैं कि बलान् कामवासना को दबाकर रखने में अनेक भयानक असाध्य रोगों की उत्पत्ति होती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर इसका और भी बुरा प्रभाव पड़ता है। फिर मैं अथवा ही मानता हूँ। मुझे सर्वश्रेष्ठ स्त्री-शरीर प्राप्त है। पर केवल मानसिक उत्तेजना ही की कमी है। इसीने मेरे सारे उत्साह को, जीवन की धिरसाधना को, साहस और विराम का अन्त कर दिया है। कितने दयनीय हैं वे पुरुष-स्त्री जो पूर्ण स्वस्थ तो हैं, पर स्त्री या पुरुष के सहवास से वंचित हैं! धर्मी, मैं तो यहाँ तक कहने का साहस कर सकता हूँ कि ऐसे स्त्री-पुरुष समाज के लिए खतरा हैं।

मैंने काम-सम्बन्धी स्मृतियों को, धाकाधारों को, विकारों को दबा-कर भुला देने की चेष्टा की। परन्तु इससे मेरी आन्तरिक कामवासना जागरित हो गई। उस दिन पागलपाने के प्रधान चिकित्सक कह रहे थे कि पागलपाने के पुरुषों के बाईं में कोई उत्तेजित पुरुष इतना घबरीला

नहीं करता कि नरक-विषय। दूसरा भविष्य का लक्ष्य है कि नरक
 धर्मों के द्वारा नरक के विषयों के लिए नरक के लिए नरक के
 नरक के लिए नरक के लिए है।

कि नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए

नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए
 नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए नरक के लिए

इन प्रयोगों में से दो प्रकार के लाभ निकलने हैं। बाहर निकलने-
 वाले लाभ को बाहर लाभ कहते हैं। यह स्त्री-पुरुष में स्त्री-भाव और
 पुरुष-भाव उत्पन्न करता है। घन-भाव रक्त में निरक्त लाभ-उत्पन्न
 करता है। जो घन-भाव रक्त के माध्यम-द्वारा लाभ-उत्पन्न करता है,
 बड़ी गतीर में पुरुषाहुति और स्त्री-बाहुति के बिना का
 उदय करता है। उच्च-प्रकार में पुरुषों के साथ-सुख और स्त्रियों के
 स्वन और निरन्त्र की बुद्धि होती है। इन्हीं के माध्यम पर पुरुष और
 स्त्री के स्वभाव का निर्माण होता है। मैंने बताया था न, कि स्त्रियों

की चार जातियां होनी हैं। ये जातियां स्त्रियों की शारीरिक एवं मानसिक भिन्नता पर आधारित हैं। स्त्रियों की ये शारीरिक एवं मानसिक भिन्नताएं भी इन्हीं स्त्रियों पर आधारित हैं। बड़ी करामात है इन स्त्रियों की। स्त्री के समान पुरुषों की भी विभिन्न जाति शारीरिक और मानसिक भेदों के आधार पर होती हैं। उनका कारण भी ये ही प्रणियों के साथ होते हैं। यही नहीं, बहुत-से पुरुष स्त्री-स्वभाव के और बहुत स्त्रियां पुरुष-स्वभाव की होती हैं, उनका भी कारण इन्हीं प्रणियों के साथ है। इन प्रणियों के उत्पन्न-पुलकण देने से ये स्त्री पुरुष और पुरुष स्त्री बन सकता है। स्त्री-पुरुषों की प्राकृति, शक्त, मूरत, शरीर का ढांचा सब कुछ इन्हीं प्रणियों पर आधारित है। सब विज्ञान पढ़कर तो मेरी भ्रमन चकरा गई है। जिन [वालों को स्वभाव स्वभाविक बाने समझते हैं, उनके मूल में इन प्रणियों के साथ का प्रभाव है। इसीसे अब बड़े-बड़े विद्वान् इन स्त्रियों की कृति रूप में शरीर में पहुंचाकर स्त्री-पुरुषों के स्वास्थ्य, शरीर के ढांचे तथा स्वभाव में अमूल परिवर्तन कर सकते हैं। जिन स्त्रियों या पुरुषों शरीर में ये प्रणियां ब्येष्ट साथ नहीं करती हैं, वे पुरुष नपुंसक हो जाते हैं और स्त्रियों के स्तन मूल जाते हैं और दाढ़ी-मूछ निचल जाती हैं। मैंने कुछ स्त्रियां दाढ़ी-मूछमानी देखी हैं। उनके स्वभाव भी पुरुषों जैसे होते हैं। पहले मैं इसे भगवान की माया समझता था, अब जान गया कि ये इन्हीं प्रणियों के साथ की करामात है। इस वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि स्वभाव वास्तव में एक रासायनिक परिणाम है और उसका मूल उद्भव अन्तःसाय से पैदा होता है। इन साथों की उत्पन्न करने वाली अनेक पेशियां हैं। यदि एक पेशी का काम सुस्त होता है तो दूसरी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है और उससे देह-स्वभाव बदल जाता है।

सोच इस कुदरती वैज्ञानिक शरीर-निर्माण की शरीरकी की जानते, और थोड़े नीति के उद्देशों द्वारा सब किसी की समय का देश देकर और उनके स्वभाव और शरीर-निर्माण के प्रतिशुद्ध उद्योग यत्नाद संघम के लिए विवश करते हैं, जिनका घातक प्रभाव शरीर और मन पर पड़ता है।

नहीं बनता जिनना शक्ति। इसका अभिप्राय तो स्पष्ट है कि उनकी अपनी शक्ति को दमन करने के लिए जिनकी शक्ति खर्च करनी पड़ती। उनकी शक्ति उनमें नहीं है।

भौतिकशास्त्री और धर्माचार्य मनोविषयमन और संयम पर बातें जितना भी जोर डालें, और उसकी उपयोगिता की जितनी भी बातें प्रशंसा करें, पर बनाने मनोनिष्ठों के द्रवित परिणामों में उनकी कुछ कारा नहीं मिल सकता। इस समय और धर्माचार्य मनोविषयमन को धारण करने की सामर्थ्य धरने ही मनसही पुरुष में हो सकती है, सर्वज्ञानारण्य में नहीं। मना सोचिए तो पार, मेरे जैसे भीवा-भादा पुरुष—जो अपनी पत्नी में अनुक्त है, और जिनसे कभी संयम के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं विचारा है, और स्वाभाविक कामोद्रेक में महान का सुख प्राप्त कर हँसी-खुशी जीवन व्यतीत करना चाहता है—क्या परिणाम-जीवी और शान्त नागरिक नहीं हैं? क्या मेरे जैसे व्यक्ति को किमी भी धर्म में सुराचारी कहा जा सकता है?

भ्रमज्ञानीजन समझते हैं कि कामवासना एक देह-स्वभाव है, जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। शरीर में कुछ प्रवृत्तियाँ हैं, वे धनक हैं। उनमें विभिन्न प्रकार के स्राव निकलने, और रक्त में मिलने रहने हैं, जिनसे शरीर में जीवनी शक्ति का स्रोत प्रवाहित रहता है, तथा जीवनी शक्ति का संचालन भी होता है। वे सूक्ष्म नाभियों के द्वारा रक्त के साथ मिल जाते हैं। इन स्रावों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर तो शक्ति प्रभाव पड़ता ही है, स्वभाव पर भी पड़ता है।

इन प्रवृत्तियों में से दो प्रकार के स्राव निकलने हैं। बाहर निकलने-वाले स्राव को बाह्य स्राव कहते हैं। वह स्त्री-पुरुष में स्त्री-भाव और पुरुष-भाव उत्पन्न करता है। अन्तःस्राव रक्त में मिलकर कामवासना उत्पन्न करता है। जो अन्तःस्राव रक्त के साथ मिलकर कामवासना पैदा करता है, वही शरीर में पुरुषाकृति और स्त्री-पाकृति के चिह्नों का उदय करता है। उमीके प्रभाव से पुरुषों के दाढ़ी-मूछ और स्त्रियों के स्तन और निमम्ब की वृद्धि होती है। इन्हींके आधार पर पुरुष और स्त्री के स्वभाव का निर्माण होता है। मैंने बताया या न, कि तिनमें

की चार जातियाँ होती हैं। ये जातियाँ स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक भिन्नता पर आधारित हैं। स्त्रियों की ये शारीरिक और मानसिक भिन्नताएँ भी इन्हीं स्तरों पर आधारित हैं। बर्दा करामात है इन स्तरों की। स्त्री के समान पुरुषों की भी विभिन्न जातियाँ शारीरिक और मानसिक भेदों के आधार पर होती हैं। उनका कारण भी वे ही प्रवृत्तियों के साथ होते हैं। यही नहीं, बहुत-से पुरुष स्त्री-स्वभाव के और बहुत स्त्रियाँ पुरुष-स्वभाव की होती हैं, उनका भी कारण इन्हीं प्रवृत्तियों के साथ है। इन प्रवृत्तियों के उलट-पुलटकर देने से बेजा स्त्री पुरुष और पुरुष स्त्री बन सकता है। स्त्री-पुरुषों की प्राकृति, शरीर मूल्य, शरीर का ढाँचा सब कुछ इन्हीं प्रवृत्तियों पर आधारित है। ये सब विज्ञान पढ़कर तो मेरी धरन चकरा गई है। जिन बातों को सभोग स्वभाविक बातें समझने हैं, उनके मूल में इन प्रवृत्तियों के साथ का प्रभाव है। हमारे सब बड़े-बड़े चिकित्सक इन स्तरों की कुत्रिण्य से शरीर में पहुँचाकर स्त्री-पुरुषों के स्वास्थ्य, शरीर के ढाँचे तथा स्वभाव में सामूल परिवर्तन कर सकते हैं। जिन स्त्रियों का पुरुषों शरीर में ये प्रवृत्तियाँ मयेष्ट साथ नहीं करती हैं, वे पुरुष नपुंसक हो जाते हैं और स्त्रियों के स्तन सूख जाने हैं और दाढ़ी-मूँछ निरस्त जाती हैं। मैंने कुछ स्त्रियों दाढ़ी-मूँछवाली देखी हैं। उनके स्वभाव भी पुरुषों जैसे होते हैं। पहले मैं हमेशा मानती थी मया समझता था, अब जान गई कि ये इन्हीं प्रवृत्तियों के साथ की करामात है। इस वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि स्वभाव वास्तव में एक रासायनिक परिणाम है और उसका मूल उद्गम अन्तःस्त्राव पेशी से पैदा होता है। इन स्तरों को उत्पन्न करने वाली अनेक प्रवृत्तियाँ हैं। यदि एक प्रवृत्ति का नाम सुस्त होता है तो दूसरी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है और उससे देह-स्वभाव बदल जाता है।

सभोग इस कुदरती वैज्ञानिक शरीर-निर्माण की बारीकी को समझते, और शोध नीति के उद्देशों द्वारा सब किसी की सधम का उद्देश देकर और उनके स्वभाव और शरीर-निर्माण के प्रतिबन्धन उद्देश्य सधम के लिए विवश करने हैं, जिसका घातक प्रभाव शरीर और मन पर पड़ता है।

मन शरीर से भिन्न नहीं है। वह शरीर ही के गुण-धर्म का परिणाम है। आत्मा को भी प्राण्मात्मिक लोग शरीर से पृथक् सत्ता मानते हैं। वे यह भी कहते हैं कि वही शरीर और मन पर नियन्त्रण करने की शक्ति रखती है। परन्तु यह कोरा सिद्धान्त ही है, व्यवहार में उसकी कोई उपयोगिता नहीं है, न विज्ञान उसके अस्तित्व में लाभ उठा सकता है, न उसके न होने से विज्ञान का काम घट सकता है।

किसी शारीरिक काम को सत्त्व इच्छा की ममोम डालना वास्तव में आत्मा का नहीं, मन का काम है। वह इच्छा जितनी दुर्दम्य होगी, मन को दमन करने से उनना ही साथ होगा, क्योंकि मन की गति ही इन्द्रियों की इच्छाओं की पूर्ति की ओर है। मन की शक्ति आनुवंशिक होती है। पूर्व के विचार-संस्कारों से वह प्रभावित रहती है, और पूर्वानुभव का उसपर प्रभुत्व रहता है। ऐसी दशा में किसी भी इन्द्रिय की विषयेच्छा यदि प्रबल होती है तो अन्य इच्छाएं स्मृति में धोमल हो जाती हैं, और सारी जीवनी शक्ति उसी इच्छा पर केन्द्रित रहती है। जब शरीर के इस नैसर्गिक उद्वेग को, जो पराकाष्ठा को पहुँच चुका है, दबाना निश्चय ही शरीर की जीवनी शक्ति के विपरीत एक भयानक धक्का देना है, जिससे वह शक्ति क्षिन्न-भिन्न हो जाती है।

धोक, चितने गहन और भयानक ये तथ्य हैं, जिन्हे सब लोग नहीं जानते, पर जिनका सब लोगों के जीवन पर नैसर्गिक प्रभाव है ! लोग कहते हैं, भगवान ही शरीर को, मन को, आत्मा को बनाता है; पर मैं कहना हूँ, ये पृथिवियाँ ही भगवान हैं। मानव-जीवन में जो कुछ सक्रिय जीवन दोख रहा है वह इन्हींका परिणाम है। मैं जब राय से इन बातों पर बहस करता हूँ, तो वह ऐसी कुटिल हसी हँसता है जैसे मैं पागल हूँ, बकवास कर रहा हूँ। वह कभी-कभी बहस में भाग लेता है, पर वह इन बातों को कहा जानता है ! मैंने उसे इन पुस्तकों को पढ़ने को सनाह दी तो उसने हसकर कहा, "मेरी तो पीरत ही खपी गई है। जब इन पुस्तकों को पढ़कर क्या होगा !"—उसके जवाब से मुझे दुःख होता है, पर ऐसा देना हूँ कि वह जवाब देने हुए उसे दुःख नहीं होता। माधुम होता है, कोई सुन्न बाज उसके मन में है। वह ऐसे प्रसंगों पर धानों में लहरने लगती है। कभी-कभी वह इन बातों की हँसी उड़ाना

है। मुझे मूर्ख समझता है। पर मूर्ख मैं नहीं, बहू है। बहू विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता।

रेखा भी इन बातों से भिन्नाती है। उसे तो ये बातें भाती ही नहीं। मुझना ही पसन्द नहीं करती। बहू उन्हें मंदी बातें कहती है, बुझमय कहकर मेरा उपहास करती है। गो क्या मैं बूढ़ा हो गया? मैं तो जीवन के प्राप्पन्ध के लिए मुड़ कर रहा हूँ। मेरे जीवन में बहू एक टीस है, बहू एक पाव है, किसने मेरे शारे प्रानन्द को निरकरिा कर दिया है? मैं तो उनीका निदान चाहता हू।

पर किसोके हुंनने पर पूणा करने से क्या। मैं लभ्य तक पटुंन चुका। रेखा से जो यह विरनि उत्पन्न हुई है, यह बहूर निती प्रनिय के साथ की मडवडी के कारण है। डाक्टर लोग यद्यदि यह बात स्वीकार नहीं करते, पर वे मूर्ख भी तो हो सकते हैं। मुझे विरवास है, मैं एक दिन प्रमय बाउ को पा आऊंगा। और रेखा को मैं प्रान्त कर लूंगा, नहीं तो मर मिटूंगा।

रेखा बहुत दूर गई है। वह रेखा से भी उसी प्रकार की बानें बना रही है। रेखा प्रसन्न होना है कि रेखा के मन में अब उसका प्रेम हीन नहीं रह गया। रेखा उसके नाम जाने डरती है। वह बहती है, बड़ी रेखा न हो वह सोने हुए उसका नाम दशोत्तर मार जाने। न जाने कैसे उसके मन में यह भीति उठ खड़ी हुई है। अब हम सन्धान में मेरी रेखा से उसा मुनकर जाते हैं। रेखा से कहा :

“मैं बहुत दूर गई हूँ। न जाने कब बना हो जाए। वहीं के गया दवाकर मुझे मार न जायें। रहने की भांति न उनमें हास्य है न उताव, न कोमलता है, न सरमता। उनके नेत्रों में न जाने एक कैसी छाया ली जगती देखनी है ! वे बड़ी देर तक पुरखान धरती से नजर गलाए हुए गौर से देखते रहते हैं। कुछ बदबारी है। फिर हंस पडा है। बँधी करावनी होनी है उनकी यह हनी ! मैं तो उसे वहीं देख गवनी, न ही सह सकती। वे जब मेरे निकट जाते हैं तो एक प्रकार का धाचमग बनने है। बड़ा भीषण, बड़ा निर्यम धाचमग होना है वह ! मैं निरनिता उठनी हूँ। कभी-कभी रो देती हूँ। कभी-कभी तो वे मुझपर पशु बन जाते हैं। तब उनका धामिनन तो बग, उनका स्वर्ग भी मैं नहीं मान कर सकती। पर वे अपनी पाणविक धारणा को मूल बन लेते हैं। मूल होकर मुझे एक घोर धरम देने हैं, जैसे धाम बुमकर मूठनी दूर पैर ही जाती है। मैं तो अब इन बानों को याद करके ही गुम जाती हूँ। कभी-कभी वे बहुत-बहुत धरनीन धाचरण करते हैं, धरनीन बनते हैं। उस समय उनके नेत्रों में एक हिमक चमक में देखती हूँ, घोर बह हो जाती हूँ। क्या वे वागत हो गए हैं ? मुझे बचाओ। तुम्हारे नेत्रों पड़नी हूँ, मुझे बचाओ। उनसे मेरी रक्षा करो। उन्हें मुझसे दूर कर दो। तुमने मेरी साज मूठ ली है। अब मैं कहाँ जाऊँ ? तुम मुझे सहारा न होने तो मैं वहीं की न रहूँगी, बोलो क्या कहते हो ?”

क्या कहूँ मैं ? मैं तो मुनकर सन्नाटे में धा गया। फिर मैंने कहा, “रेखा, सब-कुच बना दो, क्या तुम दल को प्यार करती हो ?”

“नहीं कल्लो ! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। धीरज दो मरी को प्यार नहीं कर सकती, नहीं कर सकती ! तुम अब यदि मेरे प्यार का प्रति-दान न करोगे, मेरी रक्षा न करोगे, तो मैं वहीं की न रहूँगी !”

“लेकिन रेखा, मैं भी तो तुम्हें प्राणों से अधिक प्यार करता हूँ। तुम कहो—मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ?”

“मैं दत्त से कह दूंगी साफ-साफ कि मैं बेवफा हूँ। तुम्हें प्यार नहीं करती। तुम मुझे त्याग दो। वे मुझे त्याग देंगे, तो मैं तुमसे ब्याह कर लूंगी, जैसे माया ने वर्मा से कर लिया है।”

रेखा के इस प्रस्ताव से मैं झमेले में पड़ गया। मैं समझ ही न पाया कि क्या ब्रवाच दूँ। पहले भी एक-दो बार उमने यही बात मनेन से कही थी, पर धात्र तो उमने साफ-साफ कह दी। मैंने कहा, “रेखा, मुझे मोचने का समय दो। ये बड़ी गम्भीर बातें हैं। कुछ मोच-विचारकर हमें मगता बदम उठाना पड़ेगा।” तो इमगर रेखा को गुस्मा था गया। मुझे में पहले कभी मैंने उसे देखा न था। बड़ी सुन्दर लग रही थी वह। मुझे में उमके गाल माल ही मए थे। कूने हुए माल-माल होठ फडक रहे थे, नजनों में बड़े-बड़े धामुषों के मोनी मत्र रहे थे। उमने गुस्मा होकर कहा :

“धत्र क्या मोच-विचार करोगे ? यहाँ तक धाकर क्या फिर पीछे हम पीठ मचने हूँ ? ऐसा ही या तो पहले ही मोच-विचार करते। धत्र तो मैं हवाहन पी चुधी, धत्र को मरना ही होगा। मोच-विचार से क्या होगा धत्र ?”

मैंने उसे बहुत दाइम दिया, ममभाया-कुभाया। पर वह तो निमनर रोनी रही, रोनी ही रही। फिर उमने न जाने कहीं से एक डिम्पन मन से मविन करने कहा, “नहीं, नहीं, धात्र ही इगता कैमसा कर दो। बोलो, तुम मुझसे ब्याह करोगे ? मैं दत्त से मत्र कुछ मोचकर कर दूँ ?”

अला मैं एकाएक उमका प्रस्ताव कैमे मान मचना हूँ। विजनी बदनामी होनी मेरी। माया के मुचदमे से धीर उमके चने जाने से मैं पहले ही बाकी बदनाम हो चुका हूँ। धत्र यदि रेखा के मलाक धीर ब्याह का प्रमन उठा तो एक मयानक विवाह उठ मडा हो सकना है। धिर कीरिदों की धात्र-बदम विजनी बाहियान है। इमके धरिगिध मेरे तो धीर विजनों से भी, मधकिनों से भी मधन्य है। क्या रेखा उन्हें बरीम

मेरी ? निमचव ही नहीं कर मनेगी। मैं भी उनके धीर एकनिध

नहीं हो सक्ता। घाय दूते मेरी कमजोरी बह गवने है। पर मैं तो घाय-
 को प्रपन्न ही धानी मन-स्तिपति बना चुका हूँ। मैं उनको नहीं छोड़
 सकता। घाय का वे सब मुझे नहीं छोड़ सकेंगी। इन सबके बाद एक और
 बात है, बहुत जबरदस्त है, वह है दस का स्वभाव। उसे मैं अभी भांगि
 जानता हूँ। उसका गुस्सा सोचने में मुझे मे कम नहीं है। अभी तक वह
 रेखा पर विश्वास करना है और उसका मन प्राप्त करने के लिए सब कुछ
 कर मुड़ने पर सामादा है। रेखा के लिए वह पागल हो रहा है। क्या
 पानचर्य है, ज्यों ही उसे रेखा के बेवका होने का ज्ञान हो जाए, वह हम
 दोनों को गोली मार दे। इस समय दस की जैसी भीषण और
 विषम मनोवृत्ति हो रही है, उसके लिए कुछ भी धर्ममय नहीं है। इन
 सब बातों पर विचार करके मैंने रेखा से कहा, "रेखा, तुम्हारा क्या
 क्वाल है कि दस को तुमपर और मुझपर कुछ मज है?"

"मज नहीं है; पर जब तक यह घाम-भिषोनी होनी रहेगी?"

"इस बान को छोड़ो रेखा। यह सोचो कि जब उसे धनम्मान् ज्ञान
 होगा कि तुम बेवका हो और मैं उसका मित्र ही विश्वासपाती हूँ, तो
 वह हम दोनों को गोली से तो नहीं उखा देगा?"

रेखा का चेहरा यह बान सुनते ही सिकेद हो गया। वह पचलाई
 घाँछो से मेरी घोर बड़ी देर तक देखती रही। फिर उसने कहा,
 "उतका जैसा रंग-रंग देस रही हू, उसे देखने धसम्मव कुछ नहीं है।"

फिर उसने कुछ सोचकर कहा, "तो चलो हम-तुम पुनथाप नहीं
 भाग थलें!"

"भागकर कहाँ जाएं?"

"बस, जहाँ मेरे-तुम्हारे अतिरिक्त कोई न हो।"

"पर रेखा, यह तो सोचो यह संभव कैसे हो सकता है! मैं एक
 प्रतिष्ठित सरकारी नौकर हूँ। ऐसा करेंगे तो नौकरी तो खत्म ही हुई
 समझो। पर तुम्हारे लिए मैं इतना बलिदान सह सकता हूँ। खुशी से।
 पर बेबी है। तुम्हारा भी लड़का है। इन्हे कैसे छोड़ा जाएगा। फिर हम
 जाएँगे भी कहाँ? क्या हम लोग ऐसे लगण्य हैं कि जहाँ जाएँ वहीं छिप
 जाएँ? रेखा, तुम्हारा यह प्रस्ताव कमल से नहीं साया जा सकता है।"

"तो फिर पहनी बान ही रहे।"

“तनाक घोर ब्याह वाली ?”

“हां।”

“उमपर हम विचार कर मनते हैं। परन्तु तुम अपनी दत्त की मनोवृत्ति का अध्ययन करो। उसके मन की बाह लो। अपने प्रति उनके मन में पूरा पैदा करो। तभी शायद इन काम में सफलता मिलेगी।”

“मैं तो उनसे पूरा करती हूँ। वह पुरी हूँ। अब उनके मन में कैसे पूरा उत्पन्न करूँ ?”

“मैं सोचूंगा और तुम्हें राह बनाऊंगा। तुम धबराओ मन। सब ठीक हो जाएगा।”

परन्तु वह मेरे बंध पर गिरकर फफक-फफककर रोने लगी। उसने कहा, “हाय, मैं कहीं की न रहो! किन्तु कुशल में मैंने अपना मान डिगाया, अपना शील भंग किया, अपनी कुल-भाज डुबोई! मुझे तो अब मर जाना ही चाहिए। फिर मैं जान ही दे दूंगी, तुम यदि मुझे सहारा न दोगे। मुझे इस तरह गिराकर तुम दूर खड़े नहीं रह सकते! मुझे सहारा देना होगा। मेरे साथ मरना होगा। अब मेरी इच्छा तो गई। जब यह बात, मेरी जिन्दगी का यह काला काम—बली होकर परपुरुष के सम्पर्क की बात जब मेरी जान-बहचान वाली धौरतें मुनेंगी तो क्या फहेगी? कैसे मैं उन्हें मुक्त दिखाऊंगी। कहो तो कही।”

इतना कहते-कहते वह मेरी गोद में गिर गई। मुझसे उस बदनसीब की डाढ़ण देने न बना।

मेरा मन भी उसके लिए दुःखी हुआ। पर अब किया क्या या सकता है! क्या उससे ब्याह कर लू? दत्त से सब कुछ साफ-साफ कर दू?

नहीं, नहीं, यह धमी ठीक नहीं होगा। सोच-समझकर मैं भगता बंदम उठाऊंगा।

आज चौथा दिन है, दत्त घर पर नहीं है। सरकारी काम से दोरे पर बाहर गए हैं। सभी घोर इस दिन लगेंगे उनके लौटने में। इस घर में ब्याहकर घाने के बाद यह दूसरा अवसर है जब वे मुझे घर छोड़कर बाहर गए हैं। विन्तु तब मे और प्रब में कितना अन्तर पड़ गया है ! तब वे केवल तीन दिन को ही गए थे, घोर आठ दिन प्रथम से घाने की विन्ता व्यक्त करने लगे थे। उस विन्ता में कितनी ब्याकुलता थी ! उसे देखकर मेरा मन कैसा हो गया था ! जैसे मैं इन तीन दिनों के वियोग में जिन्दा ही नहीं रहूंगी। तब तो नया ही मेरा ब्याह हुआ था; चायद दो या दार्ई साल ही ब्याह को हुए थे। प्रद्युम्न तब शिशु ही था। जब वे गए थे—मैं कितना रोई थी ! मुझे डाडग देने में वे भी रोने लगे थे। पहली ही बार उस सिंह की-नी प्रकृति के पुरुष को मैंने रोते देखा था। घोर जब वे चले गए तो जैसे मेरा सारा ससार भपेरा हो गया था। भीतर-बाहर सर्वत्र एक अभाव ही अभाव मुझे दीखने लगा था। न खाना अच्छा लगता था, न नींद आती थी। दिन-दिन-भर मैं प्रद्युम्न में उन्हींकी बाहें करती थी। बेचारा शिशु कुछ समझता न था, मेरे नेत्रों में घानन्द की भयक देखकर या प्रेम की पीडा देखकर वह हंसता था, घोर मैं उसे ह्दाती से लगा लेती थी। कितना सुख मिलता था मुझे उस समय शिशु प्रद्युम्न के आलिंगन में ! जैसे वह उन्हींका एक छोटा-सा संस्करण हो। जैसे वे ही झिुककर मेरे हृदय का हार बन गए हों। मैं तब आगले ही सपने देखती थी। उनकी मेघमर्जन-सी हसी घपने कानों को गुनती थी। उनके प्यार का घपने प्रत्येक भग पर अंकन अनुभव करती थी। उम वियोग की पीडा में भी कितना घानन्द मिलता था मुझे ! उन तीन दिन में उन्होंने चार तार भेजे। चौथे तार में घाने की

मी जब पहले की भांति मुझे देखकर खुश नहीं होती, सामने से टस
ती है। बात भी बेमन से करती है। पर मुझे उसकी क्या परवाह है।

मैं चाहती हूँ, यह साँस-मिथोनी या खतरनाक खेल बन्द हो जाए
। र हम सुल्लभ-सुल्लभा स्थाह कर लें। मुझमें इतना साहस उदय हो
या है कि मैं दस से कह दू कि मैं उन्हें प्यार नहीं करती, राय को
रती हूँ। वे मुझे तलाक दे दें। पर राय भिन्न करने हैं, टाकते हैं। परन्तु
। अब इस बार दस के वापस घर लौटने से पहले ही सब हेस-नेस कर
। ली, सब बातें तय कर लूगी। अब इस तरह तो नहीं रहा जा सकता न ?

विवाह का उद्देश्य है कि स्त्री-पुरुष दोनों पूर्णरूपेण परस्पर सन्तुष्ट
।, सुखी हों; दोनों के जीवन विकसित हों। वैवाहिक जीवन जहाँ
। पूनल पर स्वर्ग का राज्य है, वहाँ नरककुण्ड भी हो सकता है। सब लोग
। वैवाहिक जीवन की सुटियों की परवाह नहीं करते हैं। और उनके
। वैवाहिक जीवन अन्त में फलफल होते हैं। अन्त में तुलसी की वही कहा-
। वत चरितार्थ होता है, 'तुलसी गाय बजाय के दियो काठ में पाय।' स्त्री-
। पुरुष का जो आत्मसमर्पण एकान्त सुख का उद्गम है, वही निदान गौरव
। वन आता है।

आन्तव में विवाह एक विज्ञान है। वैज्ञानिक जीवन में हम विचार-
। हीन तटोंके पर नहीं चल सकते। स्त्री-पुरुष के बीच जो एक वैज्ञानिक
। सीमा है उसे जाने या माने बिना हम प्रेममूलक विवाह में भी सुखी नहीं
। रह सकते। निःसन्देह विवाह में प्रेम का बड़ा प्रभाव है और छोटी-मोटी
। अशुविधाएँ और वास्तविकताएँ तो जिनसे तरह-तरह बर्दाश्त की जा सकती हैं,
। परन्तु मैं जानती हूँ वास्तविकताओं की अपेक्षा में प्रेम भरम हो जाता है,
। और तब वैवाहिक जीवन में जलन ही जलन रह जाती है।

मैं आदर्श की बात नहीं कहती। समाज में हम यह मानकर ही
। चल रहे हैं कि स्त्री-पुरुष का जीवन मिलकर ही पूर्णरूपेण होता है। स्त्री
। के बिना पुरुष का और पुरुष के बिना स्त्री का जीवन अपनी पूरी मर्यादा
। को नहीं प्राप्त कर सकता। परन्तु एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पुरुषों
। की अपेक्षा स्त्रियों का विवाहित जीवन अधिक महत्त्वपूर्ण है। दूसरे
। क्षेत्रों में स्त्रियों के विवाहित जीवन में कामतत्त्व पुरुष की अपेक्षा अधिक
। महत्त्वपूर्ण है। पुरुष के लिए यह सुविधा है कि वह वैवाहिक जीवन से

उत्ताकर घना ध्यान और शक्ति हमारे कामों में लगा ले । पर
 लिए यह सम्भव नहीं है । यदि पुरुष स्त्री को घबेला छोड़ दे तो
 स्त्री को अमहा कष्ट होगा, और उसने स्त्री-जीवन का प्रत्येक
 समहनीय हो जाएगा; उनका जीवन मरुभूमि हो जाएगा और घा
 सब सोते सूख जायेंगे । विवाह का उद्देश्य यह है कि स्त्री-पुरुष के
 तक जो दो जीवन चलन-चलन धाराओं में प्रवाहित हो रहे थे, वे
 धाराएँ एकीभूत हो जाएँ । परन्तु स्त्री-पुरुष के साहचर्य में कामत
 महत्ता है । कभी भी स्त्री शारीरिक और मानसिक स्थितियों से
 छोड़ा जाना सहन नहीं कर सकती ।

विवाह का अर्थ यह नहीं है कि दोनों एक-दूसरे के साथ
 मिलाकर चलने का ध्यान रतें । तालमेल रखकर चलने से स्त्री का
 नहीं चल सकता । स्त्री के जीवन का सबसे बड़ा भय है कि वह
 घबेला तो नहीं छोड़ी जा रही है । भारत का समाज स्त्रीहीन है ।
 पुरुषों का समाज पृथक् है और स्त्रियों का पृथक् । इस व्यवस्था ने
 की स्थिति को पुरुषों की अपेक्षा हीन बना दिया है । समाज ने
 होना को वास्तविकता बना दिया है । और वह उसीको मानकर च
 है ।

हां, एक बात है । प्रतिभाशाली व्यक्ति की पत्नी होना दुर्घर्य जो
 का काम है । प्रतिभाशाली लोग इच्छित होते हैं । वे अपने काम में
 रहने हैं, और पत्नी के प्रति अन्यायमयक ज्ञान पड़ने हैं । वे जीवन
 छोटी-छोटी किन्तु अनिवार्य बातों में पत्नी का सम-सहयोग नहीं
 सकते, और स्त्रियाँ उन्हें हृदयहीन समझने लगती हैं । ऐसी ही
 उनके सम्बन्ध में कही जा सकती है जो उन्चाकाशी होने हैं ।

जीवन में बितनी ही अधिक दिलचस्पियाँ होती हैं, जीवन का उत्
 ही विस्तार हो जाता है । सुख-दुःख भी उतना ही बड़ा हो जाता ।
 परन्तु स्त्रियाँ जो घरों में निष्क्रिय बैठी रहती हैं, वे उनमें भाग नहीं
 सकती । उनके लिए प्रेम और काम ही एक महत्त्वपूर्ण पस्तु रह जा
 है । परन्तु यह वायद ठीक नहीं है । स्त्री को कर्म से कर्म्या भिन्नान
 पति से सहयोग करना दिनकर हो सकता है, और यह सहयोग बैरा
 अभिन्न होना चाहिए जैसा काम-साहचर्य में होता है ।

मैं स्वीकार करती हूँ कि विवाह का अर्थ जिम्मेदारियों का प्रारम्भ है। मां-बाप के यहाँ निर्दुःख जीवन व्यतीत करने वाली लड़की पर एक-द्वारकी ही जिम्मेदारियों का शूफान उमड़ जाता है, परन्तु यह भी तो मन् है कि जीवन के सम्बन्ध में पति-पत्नी को एक सहयोगी साथी होने के अर्थ एक स्वयम्भू और प्राकृतिक दर्शन है। दर्शन से मेरा मतलब बलाना की विषय उदाहरण नहीं है। दर्शन से मेरा अर्थिप्रायः वह समीक्षा-दृष्टि है, जिससे हम जीवन को देखते हैं। बेजक अब हम जीवन पर व्यापक दार्शनिक दृष्टि डालते हैं तब प्रेम और कामतत्त्व ही नहीं, संपूर्ण जीवन ही जिम्मेदारियों की अवेला लगभ्य रह जाता है, परन्तु हमें ना नहीं। जीवन तो बाहर-भीतर सतरो में भरा हुआ है ही। संसार में सूचारु होते हैं, उरुपापन होते हैं, महापारी फैलती है, धनपदी ध्वंस होता है। दिव्य जन्तु हैं, दिव्य मनुष्य हैं, ये सब तो निरुप ही हमारे जीवन के चारों ओर हैं और उनके सहारक भाष्मरण हमें सावधान होने की ओर चेतावनी भी नहीं देते। फिर भी हम हमने-बोसते हैं, साते-पीते हैं, मोर-मजा करने हैं, सतरो के कर ने हम सदैव भासकित पांके ही बने रहते हैं ! इसी भाति जिम्मेदारियाँ वैवाहिक जीवन की भारी-भारी हैं—पर उन्हें बर्दाश्त करने ना साहस और बल तो हम प्रेम और कामतत्त्व ही से पाते हैं। कामतत्त्व और प्रेम ही तो हमें—स्त्री और पुरुष को—भिन्नत्वगिजना के माध्यम से एक इकाई में बांधता है। यही तो स्त्री-पुरुष के प्राणो का गठबन्धन करता है।

यदि स्त्री-पुरुष के जीवन-दर्शन के दृष्टिकोण भिन्न हों—एक उसे गम्भीर उद्देशपूर्ण और दूसरा जैसे बने मोर-मजा करने का माध्यम समझता हो—तो दोनों की मिलकर एक इकाई न बन पाएगी, न काम-विराम और न प्रेम-विकास एक सम्पान पर केन्द्रित होगा।

इसीसे शास्त्र प्राचीन उद्योतिविद् विवाहान्त में पति-पत्नी की लक्ष्म-कुण्डली मिलाने हैं, उनमें वर्ग, गण, नक्षत्र और राशि को प्रधान देखते हैं। मैं तो इस उद्योतिविज्ञान को खानती नहीं। पर यह मैं देखती हूँ कि यह विज्ञान नर-नारी-साहचर्य पर एक समीक्षा-दृष्टि ही नहीं, समाधान-दृष्टि भी रखता है। मैं यह भी समझती हूँ कि निकट भविष्य में नर-नारी की जोड़ी मिलाने का काम उद्योतिविद् नहीं, चिकित्सा

विवाह के सम्बन्ध करने। एक एक सम्बन्ध का परिणाम ही पुन-
 -रूप का सार माना हो गया है। दुनिया के हर सम्बन्ध में भाँति ज
 की भाँति करने रहे हैं। कभी कभी जो उनके सम्बन्ध एक ही क हो
 है। मैं स्वीकार करती हूँ कि परिणाम ही जो एक रूप है जो समाज
 भाँति कर चुके, उनके बीच सम्बन्ध ही हीमा का बहू बहू भाँति
 रिश भी एक भीमा को है ही। एक एक भीमा का भाँति कभी परिणाम
 करने है। मुझे सब सम्बन्ध नहीं समझ। न जाने कौन मुझे देना
 कबोरेना होगा है, न मान्योरेन होगा है। कभी का सब भीम जति
 पुँतिपुँति है। पुँति के भाँति मे वह जिह्वा भी है। जीव कवन ही भाँति
 मिथ्या भी है। एक जिह्वा के जीव विमाने के बीच क्वानी जीव भाँति
 भाँति है, जो विशेष परिणामों के भाँति न एक में मिथ्या होने पर हू
 की भाँति न प्रभाव हाँते है। उगी प्रभाव मे हूँव की भाँति जीव हो
 परिणामों में वेक से एक-भाँति हाँति है। जीव उगीके परिणाम
 एक की भाँति सब नद भाँति है। उगीके अनुभव भाँति जीव परिणाम
 भाँति के उगीके पर पुँति-भाँति मे भाँति का जति परिणाम की भाँति वि
 उगी है जीव नारी पुँति मे समा भाँति है। सब पुँति की भाँति सम्बन्ध
 भाँति मिथ्या है। पर अब हमारी परिणाम होनी है जो पुँति-भाँति
 मे नारी-पारी पुँतिपुँति की भाँति जिह्वा भाँति है। वह परिणामदेना
 बन भाँति है। जीव नव बहू भाँति हो मे भी भाँति है।

मैं जानती हूँ, ऐसी हाँति में पुँति उनके मनस्थिति ही न जानकर
 उमपर ब्यापार करना है। ऐसा ब्यापार ऐसी ही ब्यापार मे इन
 मुँतिपर कर चुके हैं। जीव नव पुँति जाँति उगी ब्यापार मे ही मे
 मन उनकी जीव मे विरक्ति मे नद दिया है। मानती हूँ, दल मुँति पर
 भी प्रेम करते हैं। पर मैं अब यह भी जान गई हूँ कि कौरा प्रेम वैवाहिक
 जीवन को मचन नहीं कर सकता। प्रेम के पीछे जीव तत्व भी है।
 जैसे जरा-मे हीरे को बड़े-मे मसमली बहन मे मजानर रसा जाता है,
 वैसे ही प्रेमतरु की व्यापक जीवनदर्शन के बड़े क्षेत्र की भाँति-भाँति है।
 जो प्रति अपनी पत्नी के प्रति-प्रेम के लिए वह मुँति मनमनी बहन
 नहीं बना पाने, वे प्रेम-रत्न को धाँति-पौछि कभी न कभी सो हो देते हैं।

समस्त विवाह में विवाह-विच्छेद होगा ही। इस मामले पर मैं

आयकल सम्भोरला से विचार कर रही हूँ। पहले मान के प्रति मेरे मन में निरस्वार का उदय हुआ था : जैसे उसने अपने हाईज बर्न के वैवाहिक सम्बन्ध को भंग कर दिया। पर अब मैं देखती हूँ उन परिस्थितियों और जिम्मेदारियों को जो वैवाहिक जीवन को हम लोग पर मे घानी है। मैं भी अब उन मोड़ पर पहुँच गई हूँ। और जिम्मेदारियों तथा परिस्थितियों का—जो मेरे ऊपर मे ग़ुजर रही है, सम्भवन कर रही हूँ। मैं अब आती हूँ, दल से ऊपर से ऊपर मेरा विशाल विन्दोद हो चार, और ऊपर से ऊपर मेरा राय से विचार हो चार।

मना इस खोरी-छोरी के जीवन में क्या कुछ है ? और अपनी ही खोरी ? खरीर हो का खोरीखोरी ? और खुद को खोरीखोरी ? खोरी है। किसी दुखी स्त्री के ऐसे आचरण को मैं बर्दाश्त बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। पर अब तो मैं स्वयं ही वह परिणत आचरण कर रही हूँ; और अपनी ही खोरीखोरी से बिरता जाती हूँ। जैसे बर्दाश्त कर मैं इस जीवन को ! नहीं, नहीं। यह नहीं हो सकता ! अब तो दल के जाने में प्रथम ही सब कुछ निर्णय हो जाना चाहिए।

राय टालने है। क्यों टालने है मना ? क्या के सुझने प्रेम नहीं बनने ? क्या उनसे के सब छोड़े जाने छोड़े है ? उनका यह वैवाहिक दल है ? यदि ऐसा हुआ तो मैं तो नष्ट हो गई, कहीं भी न रहूँ !

यह ठीक है, सभी कुछ विचार नहीं है। सभी मैं दल की पत्नी हूँ। यह सब है कि दल फिर मे मेरा मन पाने के लिए पहले मे अधिष्ठा वेचन है। केवल मैं अपना मन कर लूँ, उन्हींमें अनुरक्त हो जाऊँ, जैसे मैं थी। वे तो सभी कुछ भी नहीं जानते। मेरे परिणत पर संदेह भी नहीं करत। फिर से मुझे पाकर लुप्त होने, अपना अन्त सम्भवन सम्भवे, और मेरा यह सम्भवन—यह सम्भवन—सभी भी प्रकट न होगा, शिवा ही रहेगा।

परन्तु नहीं, अब यह नहीं हो सकता। क्यों नहीं हो सकता, यह मैं आपको कैसे सम्भवाऊँ। मैंने कहा न था कि मन की दुनिया उन की दुनिया से सूझती है पर आयकल वास्तविक है। उसीने मेरे जीवन को खोरीखोरी से दबीच लिया है। मैं जिस मार्ग पर चल लगी हुई हूँ उसपर से अब लौट नहीं सकती। मैं उस वास्तव की स्त्री नहीं हूँ कि जहाँ प्रेम

हो वहाँ गायन बर, एत.एत बर । वन की अन्त दब में
 कर सकती है कि नद गन को मैं बनाया गरीर धांग कर बुद्धि
 डीक है कि नद नान वन के अन्तर है, गुरु है । के नदी बनने
 मैं भी जानती है । इन कबुत को धाने पर अन्तर मैं नित के व
 इन के पास नदी का सकती ।

काम, मैं इन की अन्तर गन्ती ही गन्ती । नद काटो धी
 बिचापों को मन्ती नो ही डीक का, अन्तर न । पर मैं ही कन्ती
 के मुझे बापता की धान के धौक दिना । गन को अन्तर मि
 धीर मैं गुरु नई । मैं बर्बाद ही नई ।

कि पुरुष स्त्री से अपने स्वार्थ का ही सम्बन्ध रखता है; और स्त्रियाँ इन बात को नहीं समझती। ममत्क भी कैसे लगती हैं? विवाह के बाद जो छोटी-मोटी मुझ-मुविधा और स्वामित्व उगे मिल जाता है, वह तो जमीनें सो जानी है। पति के अलावे मादर-नरार, लाइ-प्यार को देनाकर, यह यह बहना भी नहीं कर सकती कि वह मेरी संगणपामना नहीं करता। न वह अपने गिना के ही सम्बन्ध में ऐसी बात सोच सकती है; परन्तु अब स्त्री-जानि के समूचे मुझ-नु ग और उसके शिवन जीवन पर विचार किया जाता है तो पता लगता है कि पति और गिना दोनों ही ने केवल अपना ही मयल, अपना ही मुविधाएँ देखी हैं, स्त्री को नहीं। स्त्री को यह अवश्य सोचना चाहिए कि समार-भर में जीवन के नियमों का निर्माण पुरुषों ने किया है। पुरुषों के स्वार्थों और उनकी मुझ-मुविधाओं को उन्होंने प्राथमिकता दी है, और उन नियमों का निर्माण करने समय वे न गिना से, न भाई, न पति; वे केवल पुरुष से और स्त्रियाँ उनकी घातमीया न थीं, केवल स्त्री थीं। गिना ने पति बनकर पुरुषों के मुझ-दुःख का विचार नहीं किया, न पति ने पति बनकर पत्नी पर ममता की। वे पुरुष से, इसलिए केवल पुरुष के स्वार्थों को सामने रखकर उन्होंने समाज और धर्म-सम्बन्धी कानून बनाए, और उन सब नियमों-कानूनों का अधिपति रहा, स्त्रियों से पुरुष अपना प्राथम्य अधिक से अधिक चिन्ता और कैसे बसूल करे। मनु आए, पराशर आए, बुड आए, मूसा आए, ईसा आए, संकर आए और इलोक पर इलोक रचकर, मिद्धात पर मिद्धात रचकर शास्त्र-वचन की उनपर मुहर लगा दी। इन प्रकार पुरुषों के स्वार्थ ने धर्म बनकर समाज पर शासन करना आरम्भ कर दिया। धर्म के सामने भला व्यक्ति का मुझ-दुःख, स्नेह, भलाई-बुराई किन काम का सकती है? इसीका तो परिणाम यह हुआ कि मुर्दा पति के साथ जिनदा स्त्री को पति पर जला डालना भी स्त्री धर्म की चरम सीमा मान ली गई।

प्राचीन युग में लोग अपने पुत्रों-पुत्रियों को भी देवताओं के सामने बलिदान दे दिया करते थे। यहूदी संत इब्राहिम ने भी पुत्र के बलिदान का संकल्प किया था। आज हमें यह बात सुनने में अटपटी लग रही है कि कैसे गिना अपने पुत्र और कन्या की हत्या करके पुण्यार्जन करने की

या, "आप ठीक कहते हैं। परन्तु जिस देश में स्त्रियों के विर काटे जाने हैं, उस देश में यह स्वाभाविक है कि स्त्रियाँ यह जानना चाहें कि उनके विर क्यों काटे जा रहे हैं।"

किन्ती भी देश में जाइए। कहीं भी स्त्री को उसका प्राप्तभ्य नहीं चुकाया जाता। सर्वत्र ही उनके साथ अत्याचार-प्रत्याचार होता है। वह पुरुष का एक उपाग बनकर जीती है। केवल यही नहीं कि पुरुष स्त्री पर सदा प्रत्याचार करता आया है; सदा ही उसे स्वाधोचिन प्राप्तभ्य से उसने वंचित रखा है। मेरा यह अभियोग सभी देशों और सभी जातियों पर है।

समस्त ज्ञान यह है कि बलात् सहयोग एक निरुप काम है। यदि स्त्री पर यह सहयोग लाया जाएगा तो उसकी स्थिति अक्षय गिर जाएगी। मैं पहने ही कह चुकी हूँ कि धर्म की कट्टरता और अधर्म के अत्याचार ने मिलकर स्त्रियों को नीचे गिरा दिया है। धार्मिक धारण में विरक्ति होनी है। मन में यह मात्र उत्पन्न करना पड़ता है कि सामाजिक वस्तुओं में हमारी कोई मानकति नहीं है। सामाजिक वस्तुओं में स्त्री भी है। अन्ततः स्त्री पुरुष की जीवन-संगिनी न होकर उसकी एक मन्दाति, अक्षय की वस्तु बन गई है। फिर क्यों न पुरुष उसका मनमाना उपयोग करेगा ?

साधारणतः की एक धारणात्मक ज्ञान यह है कि मनुष्य अपनी स्वाधीनता को कहीं तक खींच से जाना है जहां तक किसीकी सम्पत्ति स्वाधीनता में यह टकरा न आए। यह एक प्रकार से मनुष्य के कानों पर नियन्त्रण है। और समाज के सभी प्रदन इन्हीं नियन्त्रण में समा जाने हैं। इन्हीं जिन समाज ने जिनका अत्याचार माना है उनका ही उसने स्त्री के अधिकारी तथा स्वतन्त्रता का अग्रहण किया है।

परन्तु सभ्य मनुष्य की स्वस्थ और शुभ बुद्धि स्त्री को जो अधिकार देती है, वही मानव-समाज की ठीक नीति है। उमीने मनुष्य का अग्रहण होगा। स्त्री अक्षय है, पुरुष अक्षय है। पर यह उदार और अक्षयही अधिक है। अब अब तक पुरुष यह सम्पत्ता है कि स्त्री पुरुष की सम्पत्ति है उसकी भोग-वस्तु है, अब तक धात्र की नाती से उसका कोई सम्पत्ति नहीं हा सकता। पाश्चात्य देशों में ऐसा है कि अब तक

वे स्त्री और पुरुष तन-मन से स्वाभाविक बंधन में नहीं बंध जा सकते। जब स्वाभाविक बंधन ही न रहेगा, तब कानूनी या सामाजिक या धार्मिक चाहे जो भी नाम उस दीर्घकालीन बंधन को नहीं हो सकता, न उसे समाज के लिए श्रेयस्कर समझा जा सकता है।

यद्यपि हमारे देश में भी तलाक़ स्वीकार कर लिया है। मैं कभी नहीं चाहती कि उसके पक्ष में नहीं थी, पर स्वयं इस स्थिति में था पहुँची है कि समाज के लिए अनिवार्य हो गया है। इस समय तलाक़ के मुद्दे पर चर्चा है। इसमें यह सम्भावना विकसित हुई है कि जिस समय तक पत्नी-विवाह की प्रथा का विकास ही रहा था, उस समय कानून के द्वारा पुरुष और स्त्री को मिलाकर एक करना विवाह का एक अंग मान लिया गया, जो वास्तव में एक प्रकार का मोटा था। जब प्रेम के द्वारा दोनों का मिलाकर एक होना महत्ता नहीं रखना। कानून के द्वारा मिलाकर एक होना ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। परन्तु यह व्यवस्था देर तक चल सकती है। और कानून के द्वारा स्त्री-पुरुष के मिलने की प्रथा प्रेम के द्वारा मिलना ही अधिक उपयुक्त प्रमाणित होगा; और स्त्री पुरुष के संयोग में अन्वय-होटी की भावनाओं प्रथम विवाहों का धार्मिक समावेश होगा। और तब समाज यह भी समझ जाएगा कि समाज के समस्त समाज में विवाह की जो परिभाषा, अब तक कभी धारित नहीं है वह अन्वय-बर्बत सामन्ती युग की परिभाषा का जो अर्थ लक्षित करने का जो शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही परास्त्रीयों पर सर्वथा अन्वय रहा।

दिलीपकुमार राय

सब तो ऐसा प्रथम चहुँप ही भाँति मेरे सामने आ गइं । उसकी सारी
 भावुकता, शोचलता, प्रेम जमकर बर्तों का खेतिहर बन गया है—दुग्ध-
 दुग्ध और घमण्ड, मस्त । वह जिद टान बैठी है कि मैं उसे विवाह की
 स्वीकृति दे दू, और दल के घाने पर वह सब कुछ दममे बह दे, और
 तप्राय देने पर दल को मजबूर करे । फिर हम ब्याह करके पति-पत्नी
 का शान्त जीवन व्यतीत करें । बेचारी पत्नी नहीं समझती कि सब
 उसके और मेरे लिए पति-पत्नी का शान्त जीवन व्यतीत करना कितना
 कठिन है, लगभग असम्भव है । सब वह एक पवित्र, पसूते, विवाहव्यव
 के योग्य प्रबोध बन्या नहीं है, परस्त्री है; एक अनिच्छित और एकच्छिन्न
 पति की विवाहिता पत्नी है जिसका समाज में एक स्थान है । इसके
 अनिच्छित वह एक पुत्र की मा है । और इधर मैं अपनी उम्र का एक
 लम्पट व्यक्ति हूँ । मचमुच मैं लम्पट तो हूँ ही । कितनी ही कुनवसुओं
 और कुमारिकाओं का मैंने शील भंग किया है, पवित्रता नष्ट की है;
 विलास किया है; झूठे कामे दिए हैं । मात्मभोग को मैंने प्रधानता दी
 है । स्त्री को भोग-नामची समझा है । विवाहिता पत्नी तो मेरी दो माया
 —बड़ी योग्य और निष्ठावान पत्नी थी । उसे मैंने छोड़ जाने दिया ।
 पुरवान नहीं; सान्नी भव इन्द्रजित-प्रावरण के माय । सब तो घदानव ने
 भी मेरे चरित्र पर दुश्चरित्रता की मुहर लगा दी । सब सम्भ्रान्त परि-
 वार के भोग सम्भरण रूप में घरने घर में मेरा स्वागत करते बठरावे
 हैं । सम्भ्रान्त महिचार्ण मुझसे मिलने से बचना चाहती हैं । कुछ प्रोमार्ण
 मुझे कौतूहल से देखती हैं । माया के सम्बन्ध में ध्वंश-बाण समती हैं—
 मुझे बध्द पढ़वाने के लिए, मेरा उपहास करने के लिए, मेरी ही दृष्टि
 के गिराने के लिए । मगर मैं उनका कुछ नहीं कर सकता, तिन-

मिनावर रह जाता हूँ ।

मेरी उच्च हल चुकी है । अब तो मैं पचास के पेटे में पहुँच चुका हूँ । और मेरी बदनामी यहाँ तक फैली हुई है कि मैं बेबी के लिए अच्छा मडवा नहीं पा रहा हूँ । कोई प्रतिष्ठित परिवार का सम्भ्रान्त पुरुष अपने लडके से मेरी लडकी का रिश्ता करना नहीं चाहता, मेरी लडकी को अपनी बहू बनाना नहीं चाहता । मेरी बेबी निर्दोष है, सुन्दर है, बुद्धिमान है, उच्चशिक्षा प्राप्त है । वह सब भाँति योग्य बर की पत्नी है, परन्तु मेरे बलवित्त जीवन को छाया उसपर है । मेरा कसुप उसपर छा गया है । जैसे वह एक प्रगतिप्र वस्तु हो गई है, और समाज उसे छूना भी नहीं चाहता । दहेज में मैं एक अच्छी रक्कम देने को राजी हूँ, पर तो भी लोग मेरी बात, मेरा प्रस्ताव भस्वीकार कर देते हैं । बेटी का बाग होना भी कितना कष्टकर है ! --वह मैंने अभी नहीं सोचा था :

“जाते हि नन्या महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वित्तकः ।

दत्ता मुनं यास्यति वा न वेति कन्या पितृत्व जलु नाम कष्टम् ॥”

बेबी भी अब यह बात जान गई है । अपनी विवाह की धाम्य बोलती जा रही है, परन्तु योग्य बर उसे भस्वीकार करते जा रहे हैं । इन बातों को सुन-सुनकर मेरे प्रति एक विनृष्या के भाव उसके मन में भरते जा रहे हैं । अब वह पहले की भाँति मेरा लयाल भी नहीं रखती । रस्ता से अब वह भ्रष्टा करती है । उसका इस प्रकार घर में घाना और मेरे गाँध रहना उसे बर्दाश्त नहीं है । वह कई बार अपनी विरोध प्रकट कर चुकी है । अपने होस्टल में जाकर रहने को कितना हठ किया था ! पहले सायने खाहा था, सब तो वह इन्कार कर गई थी; पर अब बहुत हठ किया और, अब तो वह बात ही लय्य हुई—उसकी शिक्षा समाप्त हो गई पर मैं देवना हूँ, इस घर में रहना अब उसे दूबर हो रहा है । लेकिन उसे कहीं निकाल कैसे ? क्या मडक पर कैसे दू ? मैं तो अपना को भँ अब उसे मेँ खाने पर धामादा हूँ—पर कोई पिये भी तो ! कोई हाथ भी तो पैसाएँ !

इस हालत में जब बेबी ने क्याह का यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी में गिर पर गवार है, तो मैं देना से क्याह करने की बात पर मरना हूँ ! मेरे सामने माटी ही बरिनाहया है, निकल बेबी ही,

सुनीलदत्त

रेखा घर में नहीं है तो कहाँ है ? कहाँ है ? आज हम दिन बाद !
भीता है । बल्लभा घर गया था कि वह बरत में घाँसे बिस्तर पर
श्रीणी । अपनी घाँसे का तार में ब्रेज बुझा था । दर वहाँ मल्लाह है

“ब्रह्मन् तो गया है ? घाँसा, घाँसा, क्या तुम भी रही हो ?”

घाँसा हड़बड़ाकर नहीं हो गई । उसने घाँसे मल्ले-मल्ले कर
“ही नहीं ।”

“भेकित रेखा कहाँ है ?”

“जी, जी...”

“बहो, कहाँ !” — क्या कोई दुर्घटना हो गई है ? रेखा घर में
है ? रेखा नहीं है ? रिडनी घाँसाकाँसे से मेरा मन भर गया है । व
घाँसा भीभी मचर बिष् नहीं है, जवाब नहीं देती ।

“जवाब दो घाँसा ? क्या उसकी तबियत खराब है ?”

“जी नहीं ।”

“वह डीक-डाक तो है ?”

“जी ।”

“भेकित कहाँ है ?”

“जी, जी...”

“जी, जी, क्या मल्लो हो ? कहती क्यों नहीं ? कहाँ है रेखा ?”

“राज के घर गई है, सभी सौटी ।”

“क्या ? राज के घर ?”

। शिर घुम गया है

... है ।

। वह वहाँ इस

निर ?

"जी, वह नहीं खनती।"
 "क्यों नहीं वह खनती?"
 "जी, मैं नहीं जानती।"
 "मेरा तार घाया था?"
 "जी।"
 "ऐसा ने पड़ा था?"
 "जी नहीं।"
 "क्यों?"
 "वे यहाँ नहीं थी।"
 "तब कहाँ थी?"
 "राय के घर।"
 "राय के घर? कब गई थी वहाँ?"
 "दोपहर खाना खाकर।"
 "घोर भभी तक नहीं लौटी? दस बज रहे हैं!"
 "जी।"
 "तार कहाँ है?"
 "यह है।"
 "तार तो तिसीने पड़ा ही नहीं है। जैना का तैसा बन्द है।"
 "तुमने तार वहाँ भेजा नहीं?"
 "जी नहीं।"
 "क्यों नहीं?"
 "हृषम नहीं है।"
 "जैसा हृषम नहीं है?"
 "यह कि वहाँ राय के घर पर कोई नौकर-बाकर न जाए।"
 "क्या घात से पहले भी गई थी?"
 "रोड जाती हूँ।"
 "किस बक्त?"
 "दोपहर में खाना खाने के बाद।"
 "घोर घाती बच है?"
 "कभी दस बजे, कभी बारह बजे रात को।"

लेकिन तुम हूँ कयों रही हो गैया ? भगवान की कनक म—म—
 —मै न—न—नगे में नहीं हूँ । घाघो, घाघो, एक किम दानिग,
 एक किम । घाघो, कती घाघो । लेकिन तुम्हारी घाघो में वह कस कसक
 रहा है—साव, साव ? क्या तुमने भी पी है ? तब तो बहार ही बहार
 है !

विधो दत्त, विधो । घानमारी में और दूमरी बोलन है ।

वाह दोस्त, धुब माद दिनाई ! साघो फिर । लेकिन पानी सख्त ।
 भीर ही सही । बोलन मुँह में लगाता हूँ । घोह घाग-घाग-घाग, जना-
 जना-जना-जना, घा-घा-न ! घा-घा-न !

विधो दत्त, विधो । घभी बोलन में बाकी है ।

साघो फिर, रेसा, और पाम घा आघो । घरे, तुम तो लन्वी होटी
 जा रही हो—दवंत के समान—क—क—कैसे तु—तुम्हें घंक में
 समेटूंगा ?

घरी घो री बटान—पापाण—पापाणी—घा—घा—घव—घ
 —घ में भाता हूँ ।

दोनों हाथ पसारकर चल रहा हूँ, और टकरा जाना हूँ घालमारी
 से—तिर चकरा गया । तीत्र वेदना—बड़ी ती—ब-बून-बून-बून !

सुनीलदत्त

ठीक है, दिन निकल गया। घूब खिड़कियों के पर्दों से छनकर आ रही है। लेकिन सिर में बड़ा दर्द है, ठीक है, राद प्राया, रात बहुत पी गया और घालमारी से टकरा गया। लेकिन रेखा कहाँ है? ओह, वह तो रात भर में थी ही नहीं! वाह, मैं रात-भर फर्मा पर ही सायद पटा रहा। अब उठना चाहिए। वह सामने शृंगार-टेबल है, उसके शीशे में देखूँ। ओफ, बड़ी विकराल मूरत बन गई। सायद सिर फट गया। कोई बात नहीं। अभी साफ किए डालता हूँ। कौन द्वार खटखटा रहा है? ठहरो जरा, मैं बाथरूम में हूँ, जरा ठहरो! यहाँ बाथरूम है। पहुँचे मून घो डालना चाहिए। बड़ा भारी जखम हो गया है। लेकिन भर जाएगा। बड़े-बड़े जखम भर जाते हैं। पर दिल में जो घाव रेखा कर गई, वह नहीं भरेगा। तो चली ही गई वह, राय के यहाँ! इनका तो मैंने कभी नहीं सोचा था। रेखा ऐसी थी भी नहीं! फिर राय की मुन्कड़े क्या समझा! वह बूझा बदमूरत घादमी है। लेकिन वह हो कैसे गया? मोचा तो करता था रेखा के रग-डग देखकर कि कहीं यह बेवफा तो नहीं है, पर जब-जब ये बातें मन में उठती थीं, मैं अपने ही को धिक्कारता था। मैं तो समझता था कि कहीं मेरे ही में ब्रुटि है। इसीसे रेखा मेरी होकर भी मुन्कड़े दूर हो गई है। पर रेखा पर-गुस्सगाभित्री बन जाएगी, यह तो मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था।

राय पर मैंने विश्वास किया। छिः, छिः, दुनिया में अब किसी भले घादमी पर विश्वास नहीं करना चाहिए। राय मेरा पुराना दोस्त है कितने पहचान हूँ मेरे उसपर! पर खैर, जो होना था वह तो ही हो गया। अब तो रेखा को विसर्जन करना होगा, जैसे देवी की सत्री-धर्म मूर्ति को गंगा में विसर्जन करना होता है। पर मैं रेखा के बिना जीऊगा

की ? नहीं, नहीं की सकता हूँ। किसी तरह नहीं। मैं पूर्ण सत्यता का
 कि मेरा ये विरा नहीं ही सकता। तो वह तो बड़ा सब मारा हूँ।
 नेना नहीं हूँ। मोहनमोहन मोहन मने के विरा। मेरे मन में
 यह भी कह सकता हूँ। मैं उनका परिचय धारा के साथ कर हूँ। पर
 मैं नहीं तो हूँ। यह क्या करो पर परिचय नहीं जग सकता ? उसे एक-
 रिण्ड होने को कायिब नहीं कर सकता ? यह वह नहीं का हूँ, वेना
 हूँ।

उसमें मैं जाने लोगों को देना हूँ। मैं जगह पीना हूँ, पीना रहा हूँ।
 मेरी हैमिण्ड न बहुत लोग पीने है। वेना इमिण्ड नहीं कि हमारे
 मणिपक पर काम का जो भारी भार है, उसे सत्य करने की सामर्थ्य
 हममें नहीं रहे, और हम सब सांगम में सुहाए मने, यतिगु इमिण्ड
 की कि वह एक योग्य मन्त्र का प्रतीक भी है। मानना हूँ कि मैं
 कभी-कभी बहुत ही शान्त हूँ; पर इनके मैंने किसीपर कोई घनाचार
 तो नहीं किया, किसी का कुछ विगाहा तो नहीं ? इनकी-नी ही बान में
 पानी यह मे बेरहा हो जायगी ? हमारे पुत्र की धरमायिनी बन
 जायगी ? तब तो भये चर्गे की मिनकों की कोई मर्यादा ही नहीं रह
 सकती। हो सकता है, जराब पीना धर्मिक काम हो, पर किसी
 विशाहिना गन्धी घोर माना का पर-मुद्रन की धरमायिनी होना क्या है ?
 उमे मैं छोरा धर्मिक काम नहीं कह सकता। वह एक ममानक धरमाय
 है और जगका दग्ध मृगु है। तब क्या मैं रेखा को मार हानू ? रेखा
 को ? जिसे मैंने प्राणों में भी उड़कर प्यार किया, जिसे के लिए मैं धानन
 बन गया, जिसे के बिना मुझे न दिन में खैर न रात को नींद, जिसे के
 नरम-गरम धारिणन की स्मृति में प्राण उन्माद में मर जाते हैं, जिसे भी
 मधुर बालों घोर प्यार-भरी विगजन प्राणों में नवजीवन फूटती रही
 है, उमे मैं कैसे मार डाल सकता हूँ ?

तब जाने ही को क्यों न खरम कर दू ? धात्रकम तो मरने में उदा-
 सा भी बट्ट नहीं होता। सनड़े-भर में प्राणनखेर उड जाते हैं। यही
 धानन डीक होगा। इनसे रेखा के मार्ग का रोड़ा हट जाएगा। उसका
 ... । वह सृष्टी में राय के साथ रह सकेगी और
 ... हो जाएगा। मैं रेखा के बिना नहीं रह सकता। क्या

बहुं, देखो, देखो, बलेजे में दर्द उठा। भाह, भाह, कौन, कौन यह मेरी एसलियां मेरे सीने में खींच रहा है? ओह, घरे भाई ठहरो। इतने जालिम न बनो, मैं अभी जिन्दा हूँ। जिन्दा भादमी की पसली उसके सीने से भला इस बेरहमी से निकाली जाती है! ओफ, ओफ, भाजी बहुत दर्द है, बहुत—बहुत!

इसकी एक दवा है। धभी यह दर्द काकूर हो जाएगा। यह इस दराज मे दवा रखी है। निकालकर देखू? यही है, यही, खरा-सी काली-काली पीठ है, मगर बड़े काम की है। आज तक मैंने कभी इसे इस्ते-माल ही नहीं किया। खिलाना बनी पड़ी रही इसी दराज मे। आज शायद काम घा सकेगी? गोलियां कहाँ हैं। ये रहीं, भर लेता हूँ। पूरी बारह गोलियां मैंने भर ली हैं, पर मेरा ख्याल है मेरे लिए एक ही काफी है! मुह में लयाकर घोड़ा दवा दूया, बस सब काम अपने-आप ही हो जाएगा। किन्तु चाहे जो भी हो, रेखा बेवफा बने ही हो गई हो, पर वह मेरे लिए रोए बिना तो नहीं रहेगी। मेरे जैसा दिलदार भादमी उसे मिलेगा कहा?—हां, हा, मैं अपने कमरों पर विचार कर रहा था। मैं अपनी शराब पीने की आदत की बाकल कह रहा था जिसने रेखा को मुझसे पृथक कर दिया।

पर इतनी ही तो बात नहीं है। उन कित्तारों मे मैंने पड़ा था कि घोरन अपने-ही नहीं रह सकती। मैं मुबूल करता हूँ कि मैं अपने बानों के हूवा रहता था। मेरा काम भी तो जिम्मेदारी का था। रेखा का प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, सो क्या हुआ! क्या मनुष्य का जीवन भोग विचारा ही के लिए है? नहीं, नहीं, मनुष्य के बहुत से जिम्मेदारी के महत्वपूर्ण काम हैं जिनका सम्बन्ध समाज के जीवन से है। भोग विला-जीवन का उद्देश्य नहीं है, जीवन को बरसम रखने का भोजन है। इनको ली बात रेखा ने नहीं समझी। नहीं, नहीं, कसूर मेरा नहीं है रेखा का है। फिर मैं दण्ड क्यों औगू? अपनी जान क्यों दू?

तब फिर क्या करूँ? रिवाल्वर तो मेरा तैयार है, उसमें बार गोलियां भरी हैं; पर तो बस खरा से साहस की आवश्यकता है। नहीं, नहीं, निर्णय करने की आवश्यकता है। यह ठीक है कि मैं बेकसूर पर यह ग्याद-कंसला कहां हो रहा है भसन बात तो यह है कि मैं रेखा

के विना किसी मरुत बंदम नहीं उठा सकता, और मैं देखा जे बिना जी भी नहीं सकता । देखा की बंदमानी जानों में गुन भी नहीं सकता । पर-पुरुष के अंक में उमे देख भी नहीं सकता । इसलिए यह मृत्यु ईश नहीं, दवा है । दवा के तीर पर मुझे एक गोनी सा बेनी चाहिए ।

हां, हां, मुंह में नाग डालना ठीक होगा । या कनपटी पर ही निगाना साबू ? कहीं ऐसा न हो निगाना चुट जाए, और मैं केवल बहनी ही होकर रह जाऊं; मरूं नहीं ! मुंह में ठीक है; हां, इसी तरह—यही बम ।

कौन ? कौन ? कौन द्वार खटखटा रहा है ? घरे ये नो देखा का स्वर है ।

“खोलो, खोलो, दरवाजा बन्द करके यहाँ क्या कर रहे हो ?”

“...घरे तुम हो देखा ? अच्छा, अच्छा ! ठहरो, खोलता हूँ द्वार ! बरा ठहरो, बरा ठहरो, बरा...”

लेकिन ! यह नो एक सेकण्ड का ही काम रह गया । सत्य ही क्यों न कर दूं !

“खोलो मई, दरवाजा खोलो ।”

“खोलता हूँ, खोलता हूँ ।”

चलो एक बार फिर देखा को आल भर देख लूं । फिर यह क्षण तो माझे जब घा जाएगा । समो इमे दरवाजे में रख दूं । कोई बात नहीं, कोई बात नहीं । रिवाजवर दरवाजे में रख देता हूँ । दरवाजा खोल देता हूँ ।

सुनीलदत्त

“दरवाजा बन्द करके क्या कर रहे थे ?”

“ही ही ही, घाराप कर रहा था। घाराप ! समझो हो न, घाराप !”

“लेकिन यह घोट कैसे है ? तारा सिर खुन से भर गया है !”

“खून से ? डीक कहती हो तुम रेखा। मेरे शिरम में खून बहुत है।”

धीर रेखा ने धूल से खून पोसा है, जन्म साफ दिया है, पट्टी बांधी है। वही नर्म-नर्म हृदयलिया है। वही बच्चे की बत्ती के समान रंगलिया है, वही सात्वता से फूले हुए मान-मान होंठ है। बड़ी तटुकरता से, ममता से पट्टी बांध रही है। मला इग प्रेम की पुगली पर कैसे बोली चलाई जा सकती है ! कैसे इसे मारा जा सकता है ! कितने मोतेजन से बात करती है ?

“घोट सगी कैसे ?”

“बिर गया मैं, घालमारी ने टकरा गया।”

बहु पट्टी बांध रही है, धीर पूछ रही है—

“कैसे टकरा गए ?”

“ही, ही, नसे के झोंक में मैंने समझा तुम हो। घालिमन मे ले लिया, सिर टकरा गया।”

“इतनी क्यों पीते हो तुम ?”

“बेशक, बुरी बात है ! है न ?”

“सौर, धय जरा हाथ-मुंह पो लो। धाय सँवार है।”

“तो मैं भी सँवार हूँ, बस घुटकी बजाते काम हो जाएगा। ही—ही—ही !”

भरा हुआ है। यह शायद बाँप रही है।
करती हो?"

"मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहती हूँ। मुझे

"सुन बातें करो। लेकिन धीरे पास खिस

"सब कुछ तुम मुझे डरा रहे हो।"

घब फिर मेरी हूँ बिखर गई। मैंने कहा :"

"मेरा हाथ खाली है, फिर क्यों डरती हो ?"

ही -- "खैर, उन बातों को जान दो। लेकिन जान कह

"मैं - मैं डरता हूँ।"

"वस ?"

"घब हम एक साथ नहीं रह सकते।"

"ठीक है। धीरे ?"

"तुम मेरे साथ कौनसा बर्ताव करोगे यह बता दो। मैं सब
कर लूगी।"

"बहुत गम्भीर बात है। पर मैं कहता हूँ—बहता हूँ, तुम्हें मु
डरने की जरूरत नहीं है।"

"तो मैं साफ-साफ बातें कह दू ?"

"कह दो।"

"मैं राय को प्यार करती हूँ।"

"मैं समझ गया। ठीक है। लेकिन इतने धीरे से मत बोलो रेखा
हालिया। कोई मुन लेगा।"

"तुम मुझे तलाक दे दो। मैं उनसे शादी कर लूगी।"

"शादी की बात बहुत बढ़िया है ! बाजे बनेंगे, शहनाई बनेंगी—
मजा रहेगा। तो फिर ?"

"तुम उत्तेजित होगे तो मैं कुछ न कर सकूगी।"

"यह भी ठीक है। लेकिन मैं... मैं सोना चाहता हूँ।"

"पर अभी मेरी बात पूरी नहीं हुई।"

"तो क्या हर्ज है, अभी जिवन्ती भी तो पूरी नहीं हुई।" धीरे में
लडखडते पैरों से चलकर शयनागार में पड़ गया हूँ। सुब सोया हूँ। धीरे
अभी साँस सुली है। तबियत तो मेरी ठीक है। ऐसा प्रतीत होता है, रेखा

उनके नेत्रों
डर गई
सुब
क्या।
मूंह

के हैं

बैठी हो री । मुझे इनके की बात ब्रह्मण है ? और वह बात ही
 चर्च । ? यह ब्रह्मण ही तो चर्च है चर्च ही ही बुद्धि है । यह
 'नैर' । माने है क्या ब्रह्मण है ? केवल क्या ब्रह्मण है कि मैं
 ने च । मैं माने यह हूँ विचार नहीं किया ? मुझे देना
 का जो इच्छे । यह एक धर्मगर्भी है । क्या यह मे देना को बुझाने पर
 'गुड़ी' । क्या देना कर्म पर ब्रह्मण रूप के मान गयी ? तबहु हूँ
 "प"भीमाना करो का धर्म मान करती है ! किन्तु यह मुझे ब्रह्मण-
 "मी" माने वाद ही गयी है, और हूँ ब्रह्मणों का यह नहीं समझ
 कि धर्म समझ रहा हूँ । यह ब्रह्मण ब्रह्मण ही पूर्ण है । मेरी देना
 समझने ही है । यह ब्रह्मण का मान है । यदि मैं उसे गोपी से उठा
 वह भी वह देना ही ही विवेका । यह निगवार यह आत्मी । मेरी
 भी उद्यो के बाद उद्यो यह ब्रह्मण ही विद्वि ब्रह्मण विमके विद्वि अपने
 जाना मनीष धर्म किया ।

मुझे मर बागों पर मुझे ब्रह्मण मे विचार करना पड़ेगा । देना मे
 यह वा कर्त ही दिया कि यह मान को प्यार करती है । न करती तो मैं
 मैं जान गया था कि यह मुझो विभेद कर के उनमे जादी करने को
 बेचैर है ।

मैं उनके मुह मे यह बात गुन मका । प्रक्या ही हूँ कि मैंने उन-
 पर धारणा नहीं किया यहाँ बना माना । ईर्ष्या-द्वेष मे क्या मान है ?
 मैं एक बार राग को पूछू कि यह देना मे जादी करने को सँवार भी
 है !

यदि है तो मैं वही धर्म को गोली मारकर लक्ष्य कर मुँहा घोर
 देना घोर उनका रास्ता साफ कर दूँगा; पर यदि उसने इन्कार किया
 तो उसीको मार दालूँगा

रेखा

लोकर उठने के बाद वे लाग्य और त्वानादिक से ; फिर भी उनके मन में न जाने कैसा भाव था ! मैं गूबहू ही उनके रंग-रुंग से ऐसी बट म दी कि अब कुछ कहने का मुझमें साहस नहीं रहा । अब वे धार, लु से । उन्होंने मेरे साथ साथ ही, प्रद्युम्न की गोद में बैठकर प्यार किया उनकी यह मरणा, मृत्युकी मरणा और प्रेम देगवर तो मेरा कनेजा म को जाने मया । हाव, कने बट की बात है कि मुझे दग पुरन को- पति को छोड़कर आना पड रहा है ! पर मैं रह भी कने मरनी हूँ उनकी पत्नी मैं रही कहुं ?

मैं धरने मन का धोर भी धारकी बना दू । राव से मैं धारित हूँ । क्याहू को कर्ते बार-बार टालने है ? को ही, मैं धारण सौट सरकी न —यही तक पहुचकर । धारित मैंने यह बात उनगे कह दी । बट क न गई यह जमान ? वे मुनकर कुछ धारकी-की धेप्टा करने मये । क्या पहले से ही सब बातें जानते थे ? गूबहू तो उनकी प्रत्येक धेप्टा उग्य जैसी थी ।

अब तक साथ पीने रहे, प्रद्युम्न की धोर कने धार से देगते र कषों देग रहे ये वे मया दस तरह ? लाग्य के कुछ पुछना चाहते हैं कोई गम्भीर ममेयेदी बात । परन्तु पूछ न सके, केवन मुम्कराकर ए । लाग्य उन्हें इस बात का इमीमान नहीं हुआ कि मैं लच-लच बातों का जवाब दूगी । धरस्मान् ही उन्होंने कोई दिग्बर देलने प्रस्ताव किया । मैं नहीं न कह सकी । ह्य दिग्बर देलने बते । रा मर वे हंस-हंसकर बातें करने रहे, प्रद्युम्न की बालों का जवाव रहे । बाजार से उठे बहूउ-से तिलीने दिनराए । रुपये के दस ल फेंक रहे ये जैसे रही लाग्य के दुकड़े हों । मैं हीरान थी । मुमगे ल

बहर बिबर दर ही है । अभी एक ही रीत भाव हुई है कि वे उठ गये हूँ । उन्होंने कहा, 'देखा, एक बहुत अच्छी काम बारा का गया, मैं अभी जाता हूँ । तुम बैठो ।' पीर के बिना पीरी पीर हैने लखने हुए बने दर । मेरे गोक का बाहा दर के नहीं दर । 'अभी जाता हूँ, अभी जाता हूँ,' बहने हुए बने दर ।

इसका का मन हो बिबर से लग रहा है । दर मेरा मन दर में है । कहां बने दर के ? ऐसी बीन-बी बाग बाह का गई ? बड़े घातकद की बाग है यह । बिबर भाव ही रही है, दर दर का गया नहीं है । मेरी बेनेपी दर रही है । धर में यह बेनी लखारह उठ रही है ! क्या बाग है ? कहां बने दर के ?

बिबर भाव हो गई । दर नहीं बाग । बाहर प्रतीता बन रहा का । मैंने पूछा, "बाहुर बाग ?"

उन्होंने सी तानी के पूछा, "बीन बाहुर ? दर बाहुर का राव ?" मुझे मेरी घासें बाग उठी । वे बीन-बी बाग का मेरा उपहास करने हैं । दर मेरे घातक होकर कहा, "दर बाहुर की पूछती हू ! देखा नहीं, बाग है ?" दर पीर में घातकता मे प्रकाश दिया, "दर बाहुर हृषम के दर है कि मैं टैवनी मे बन बाग का दर मे जाऊ । बाहुर के मे गए है ।"

"लेकिन कहां दर हैं दर दर बाहुर बाकरमान् बहाना बनाकर ? बनो बन्दे । एक टैवनी मे घासो ।" गोक टैवनी भागा है पीर में टैवनी में बैठ जानी हू ।

दर भी के नहीं पढ़े है । मेरा मन भव मे चरई उठा है, पीर मेरा फलेबा भूह की घाने लगा है । न जाने क्या होबाला है । लेकिन घातक के गए कहां ? लख-लख धारा मुझे पहाक लग रहा है ।

दर बन्न रहे हैं । दर नहीं बाग । जाना लिए प्रतीता में बंटी हू । ऐसी प्रतीता मैंने बीरन मे कभी नहीं की थी । मेरे प्राण भावुन हो रहे हैं । जीवन मूना हो रहा है । क्या बाग है यह, मैं नहीं जानती हू । परती लता लका लग रही है, पीरों के लखुए बने जाने हैं । कभी घर में, कभी बराहे में, कभी मान मे घातक देण रही हू । कहां है दर ? उनके बिना सारी दुनिया घातक मूनी लखर का रही है । बाहुर भाव है । तारे सब भद्र भुके । बिराग भुक्त गए । घातक है—बाहुर दुनिया मे भी

घोर बँक-एकाउचट तुम्हारे नाम प्रथम ही कर दिया है। घामो, घोर पास घामो ; मेरे घंके में बैठ जाओ। उसी भाति त्रिण भाति ध्याह के बाद बैठती थीं। अपनी भूखबस्तरी मेरे कंठ में जाल दो घोर एक प्यार दे दो, बस एक प्यार। प्यारी रेखा, झलिन, स्वीट ! घामो, घामो। हाँ, हाँ, एक बात बता दो, प्रचुम्न...लैर, जाने भी लो। सब एक दण-भर के लिए यह बात जानकर भी क्या कहेंगा ?...

“घामो, घामो मेरी प्यारी रेखा। इतनी निकट घा जाओ कि मेरा हृदय अपनी अन्तिम भाङ्कन तुम्हारे हृदय की पङ्कन से मिला दे।”

“लेकिन, लेकिन घरे, यह तो बेहोश हो गई। पडाम से कर्ण पर गिर गई। तिर फट गया हसका। किये पुराहं ? किये...घोफ !”

सुनीलदत्त

मन कृष्णविषय करते ही मैं मन में लिखता था। मन बानों पर धारणा-
 नीचे मोडकर मैं धारणा करने पर लिखने पर लिखता था। मैं धारणा नहीं
 था, मन बानों को डीक-डीक मानता था। ऐसा मन में शान नहीं उठ
 सकता था। बहुत बड़ा कि जैसे पूरा शरीर, उनका मन को हृदय में
 लिखने शान, पर हृदय में मुझे मानना नहीं मिली। वेने जैसे धारणा के
 लिए धर बहुत ही विविध बात है कि मैं एक धारणा के लिए धारणा मनुष्य
 जीवन की बलि देने को तैयार हो गया। पर क्या किया जा सकता था।
 मैंने समझाया और धारणा के काम निवा, और धारणा को परिचितियों
 के समुहगत बनाने की धारणा के साथ ही। मैंने धारणा मन के मनुष्य विरोध
 को धारणा में रखने के लिए हृदय में एक मन पर लिखना गया। स्वी-
 कार करना है, कुछ ऐसे मन हुआ करते हैं जिन्हें ज्ञान-बुद्धि का अपना
 जीवन धारणा होता है कि वे मन धारणाओं को बदलना नर केने हैं।
 धारणा वे मन बानों ऐसी है जो सामान्य एक दृष्टि में धारणा में लिखती थी।
 धारणा धारणा यह धारणा न करे कि मुझे कुछ धारणा धारणा-धारणा की
 धारणा नहीं था मुझे धारणा-धारणा धारणा में रखना रहा—क्योंकि उन
 धारणा को मैं धारणा लिए डीक नहीं मानता था। मैं स्वीकार करता हू कि
 जीवन के मानसिक मनुष्यों में मेरी कभी धारणा नहीं रही, और
 मन के मनोवैज्ञानिक धारणा में मैं धारणा ही रहा। मन में धारणा की
 धारणा, धारणा और धारणा के प्रथम होने हैं। उनमें धारणा धारणा
 और धारणा धारणा की होने हैं। उनमें बहुत से धारणा-धारणा होने हैं
 और वे धारणा-धारणा मनुष्य के मन में धारणा-धारणा और जीवन में
 धारणा एवं धारणा प्रदान करने हैं। इन धारणाओं को मन में रखना धारणा
 काम है। जो धारणा मनुष्यता के निर्माण में धारणा में रहा हो उनमें यदि

नाम-धावेगो का विराध उठ खड़ा हो तो वह उन व्यक्ति की क्रियाशक्ति को दूसरी ओर मोड़ देगा—यह एक बहुत बड़ा सनरा है । नाम-धावेग या यौन-जीवन का महत्त्व सबके सामने खोलकर नहीं रखा जा सकता । यह सामाजिक हितों के विरुद्ध है । इसीसे हम मामले में समय का सहारा लेना पड़ता है । पर संयम की भी तो श्रमता, सीमा है । नाम-धावेन और संयम की सीमाएँ जहाँ टकराती हैं वहाँ कुछ गलतियाँ होती हैं और वे कभी-कभी ऐसी चारी हो उठती हैं कि मनुष्य का सारा जीवन नम हो अस्त-व्यस्त हो उठता है धरवा मनुष्य आत्मघात या धून भी पर बैठता है ।

देखिए, धून के नाम से धाप डरिए मत । इस वक्त मैं इस स्थिति में कि मैं धून करने की मनोबंज्ञानिक पुच्छभूमि पर विचार करने चला । मैं कोई मूढ़, झोषी और ईर्ष्यालु पति नहीं हूँ । एक सहृदय और नवान, अपनी सब जिम्मेदारियों से परिचित पति हूँ । तो सुनिए— मैं मेरी बान सावड धाप फिर न सुन सकें । कुछ ऐसी अवस्थाएँ घाती जब महत्त्वपूर्ण बातें बहुत हलकी दिखाई देती हैं । पर उनके धून से । बड़ी-बड़ी बानों के निर्णय पर पहुचते हैं । उन समय हम उनकी । देखने भी नहीं । हम यह नहीं सोचते कि वे मामूली बाने कार्य-परण के नियम से संबो हुई हैं, और वे त्रिम रूप में घटिन हुई हैं उनमे वरे रूप में भी घटिन हो सकती हैं, त्रिनमे जीवन-परण का संकट घा नभियन होता है ।

यौन जीवन का धर्य है—अनुचिन, धर्यात् त्रिनकी चर्चा नहीं रनी घाटिए । परन्तु सब नाम-वृत्तिया पनन का चिह्न है, यह मैं नहीं जनना । संभोग के अल्पभन मे अनियमित सम्बन्ध रूप भादिम जानि । मेजर धात्र की सम्पत्ता तब मैं बैसा ही देखते हैं । भादिम बाल से शर धात्र तक यौन-प्रवृत्तियों के समूह में—समुष्टि और अस्वीरुति । बीच इन्द्र यौवुद रहा है । प्रवृत्त यौन सुष्टि की कुचटा से सावड-जीवन । अनिच्छ सम्बन्ध है । नाम-धुषा एक भीषण धून है । यह यह बल है । त्रिनके द्वारा नैवगिन यौन वृत्ति उयी प्रशर अपनी धमिध्वक्ति ररती है अंगे पोषण की नियम-वृत्ति भूष के द्वारा धानी धमिध्वक्ति ररती है, यौन उत्तेजन और संवृष्टि के बीच बहुत-सी बातें हैं । वे

सांस्कृतिक है, और सामाजिक भी, सामाजिक भी है और व्यक्तिगत भी। इन सभी में जीवन संबंध की पराकाष्ठा है। सामाजिक वह है जो सामाजिकता का दृष्टांत है। और सामाजिकता का दृष्टांत है जीवन ही है। और सामाजिकता का दृष्टांत है जीवन ही है। और सामाजिकता का दृष्टांत है जीवन ही है। और सामाजिकता का दृष्टांत है जीवन ही है।

वही सब जगत् कापत्ता के हैं। ऐसे दुःखवादी को जीवन के सार उपायों के बिना ही विना ही दुःख के भी जीवन को संतुष्ट किया है। कष्टमय दुःख संतुष्ट में कोई तदनुभव नहीं करना। कष्टमय रहता है, कोई नहीं महीं, दुःखवादी को दुःखवादी मान रहता नहीं चाहती। दुःख के देव नहीं करती जो कोई बात नहीं है। उसे बहुत बनी जाने से जिसके वह देव करती है, और दुःख कोई भी दुःख के सारथी को अपनी ही नों, जो दुःखें प्यार करे। परन्तु मैं दुःख का दुःख को हीने हीने कर सकना हूँ। यह परिणामों की परत-बदन बिनादुःख कादितान कस्तु है। फिर केवल प्यार ही जो परिणामों के बीच का माध्यम नहीं। परिणामिक और कष्टमय से संबंध है। नहीं, ऐसा व्यक्ति दुनिया में जिन्ना नहीं रहना चाहिए जो दुःखों की परिणामों को हानि करना है, दुःख की परिणाम और निष्ठा को नष्ट करना है। मैं उसे धार माह सामुदा। परन्तु वह मेरा मित्र था। उसका प्यार माह धारण है। बीने दिन माह धारण है जब हम दोनों हुए हमने से, माने-भीने से, मोह-महा करने से।

तो न मही। मैं उससे कहूंगा कि वह ऐसा से म्याड कर से और धारण को गोपी सारकर धारणहृष्या कर मुगा। कम, बसोडा मय्य। मेरी भी सब तकनोंके साथ और ऐसा की साधा दूर।

घोड़, वह घेंटेमिर में कैसे तेज बाकू बन रहे हैं! लेकिन सब मैं बेहोश होना नहीं चाहता। दिवाल्कर टोक है। गोमियां मरी हुई हैं परन्तु धारणयक है कि शरीर और मन में पूरी स्फूर्ति हो। मैंने इटकर स्नान किया है, कपड़े बदले हैं। ठीक-ठीक शरीर-विन्यास किया है। और मैं हंसता हुआ ऐसा के साथ साथ पी रहा हूँ। पिक्चर देखने का मैंने ही प्रस्ताव किया है।

ऐसा भीता-बकिता हरिणी की भांति चौकली है। उसकी मनो-

दशा देखकर दुःख होता है। मला मेरे रहते रेखा को यह हालत! परन्तु अफसोस, भाव तो वह मुझीसे डरी हुई है। पति—जिसके अंक में स्त्री संसार के सभी भयों से निर्भय और सभी धानन्दों से भरपूर रहती है, सो रेखा उसी पति से भयभीत है। न मैं उसे डाढ़स दे सकता हूँ—धीर न वही मुझसे भय मांग सकती है। उसकी दशा तो उस पशु के समान है जिसे मान हो गया हो कि सभी उत्तम वच होनेवाला है। कितनी कसबापूर्ण है उसकी दृष्टि! देखी नहीं जाती। कलेजा मुह को घा रहा है।

सायद उसके मन में पदचाताप का उदय हुआ है। पर अभी तक बिगडा कुछ भी नहीं है, यदि वह पदचाताप करे, यदि वह फिर बेसी ही अमल-अवल उत्तमोत्तम कमल के समान उज्ज्वल हो जाए। उसके अघर फडक रहे हैं। उच्छ्वस—धमामे अघर। वह मुझ पति से भी डरते-डरते संकोच से बात करती है—बिलकुल जैसे पराई ही।

काम कि फिर वे दिन सौट पाते! काम कि मान कोई शैतान भाकर बह दे—धरे दस, वह सब तो सपने की बातें थीं। वह तेरी रेखा तो वही है—वैसी ही है। इसे घर में भर। इसका शुभ्यन ले। किन्तु खैर, अब इन बातों में क्या रखा है!

चाय खत्म हो गई है। और हम लोग चिक्कर देखने जा रहे हैं। प्रद्युम्न बहुत खुश है। हाँ, प्रद्युम्न भी बात तो रह जानी है। प्रद्युम्न किसका बेटा है? क्या मेरा है? कौन जाने! पुरवती औरत का क्या मरोगा! अब तो बेटे भी विश्वसनीय नहीं रह जायेंगे। पत्नियों की एकजिह्वा नष्ट हो जाएगी। समाज ने, बानूत ने स्त्रियों को बदल-बदल की छूटी दे दी है अब तो। अब तो संसार के सब पुत्र सदिग्ध हो गए, अपवित्र हो गए, पिता के प्यार और विश्वास से वंचित हो गए! इस पुत्र का पिता कौन है, इस बात को तथ्यतः केवल एकमात्र वही धीरत जानती है, जो बूड़ी हो चुकी, विश्वासपातिनी हो चुकी, पर-पुत्र्यागामिनी हो चुकी! कौन पति उसपर पतिदाएगा?

जो चाहता है पूछूँ रेखा से। सायद सच्चा जवाब दे दे! सायद प्रद्युम्न मेरा ही पुत्र हो, मैं ही इसका पिता होऊँ! अब तक तो मैं सपने ही को पिता समझता रहा था। पर वह मैं वहाँ जानता था कि रेखा

बेवफा है, पर-मुकामामिनी है। अब ता जैने कोई जंजीरों से जकड़कर मेरे मन को बांध रहा है। प्रद्युम्न की तरफ बढ़ने ही नहीं देना। पर बेचारे बालक को क्या पता है इन सब बातों का! वह तो मात्र बहुत खुश है। इनने दिन में वह परेशान था—मैं बाहर गया था, रेखा घर से बेधर हो रही थी। बेचारा बच्चा मां-बाप दोनों को खोकर झोला रह गया। मात्र उगे प्राण है—मां भी, बाप भी। पर शायद प्यार न थाप का प्राण है न मा का। मेरे मन में तो शका का भून मवार है। और रेखा यदि उसे प्यार करने तो घर से बेधर क्यों होती! कुछ घपराघ था तो मेरा हो सकता था, बेचारे बालक का तो नहीं! पर जाने दो इन बातों को। पुराने प्रभ्यास ही से सही, मुझे प्रद्युम्न को प्यार करना चाहिए। रेखा को तो मैं प्रमी भी प्यार करता हूँ—बेवफा को, कुल-नलंकिनी को। फिर बालक ने क्या बिगाडा है? वह बाप भी मैं पूछ लूँगा, यदि मैं वापस सही-मनामन लोट आया, यदि मुझे स्वयं न मरना पडा। और यदि मुझे ही मरना पडा तो केवल कुछ घड़ी के जीवन के लिए एक और दर्द को दिन में क्यों उत्पन्न करूँ!

प्रद्युम्न बहुत बातें कर रहा है, और मैं सबका उत्तर दे रहा हूँ। कुछ ठीक, कुछ बे-ठीक। रात मेरे वचन में बहुत चीखें उभे मिल गई हैं। मेरे घाघरू से रेखा ने बड़े मजोब से वह कीमती साडी पहनी है जो मैं दूर पर जाकर खरीदकर लाया हूँ उम के लिए। क्यों साहब? मजोब से क्यों? चाप से क्यों नहीं? खैर, जाने दोजिए।

गोकर कार ले आया है; खजब डग से वह देख रहा है हम लोगों को। जैसे वह राउदा हो। लगता है वह मन ही मन मुझपर हंस रहा है, मानो कह रहा है—घरे, बड़े गधे, लानत है तुझपर! तू इतना बडा घादमी है तभी हम हुरामजारी को सजा-बजाकर ले जा रहा है, हंसते-हंसते बाले करना हुवा। घरे, हम छोटे घादमी यह सब बर्दाशत नहीं कर सकने। मैं होना तो बंडासे से मिर काट डालता छिनाल का। छिनाल औरन का भी भला क्या पतियाव!

... पावे कह रही हैं और मैंने उसने बालें पुरा सो
... मरी नजर ने मेरी घोर देख रहा है। सब सब कुछ
... शानता चाड़िए था—वह मैं नहीं जानता था।

यह बाजार था गया। कनाट प्लेस। वहाँसे जब रेखा यहाँ मेरे साम
 घानी की दस्तों की चीजें खरीदने का शोषण बनाती हुई, तो विनो
 मन्त्री लगती थी तब। किन्तु घाय तो वह चुन है। घरी, रेखा वहाँ है
 यह। यह तो रेखा की लाश है।

“बलो रेखा, बलो बच्चे, भाषो, खरीदो ! अपनी पसन्द की चीज।
 और रेखा, जरा इधर तो भाषो। एक चीज मैंने पसन्द की है तुम्हारे
 लिए। देखोगी तो मुझ हो जाओगी।” रेखा है कि उसके होठ सूख रहे
 हैं। भाषों की पुनर्विधा घूम रही है। वह डर रही है। और मैंने एक
 डोरे की घमूरी खरीदकर उसकी नाकुक उगली में डाल दी है। सो
 साहब, मेरी सगाई हो रही है रेखा से। सुनिया मनाओ, बगलें बजाओ।
 भाषो घाय सब लोग भाषो, मिठाइया खाओ। सुनी का मौका है,
 मानन्द का धरमर है। सगाई हो रही है मेरी रेखा से !

क्यों ? घाय चीज क्यों गए ? क्या मैं बूढ़ा हो गया हूँ ? घरी तो मैं
 चाचीम का भी नहीं हुमा ? रेखा तीस के पेटे में है। हम दोनों धीनन
 में भरपूर हैं। बराबर की जोड़ी है। हमारी सगाई क्या डीज नहीं है ?
 घाय हनने हैं। हमारा साहब, हमारा, यह हमने ही का मौका है। मैं भी
 हन रहा हूँ। हा हा हा हा।

लेकिन रेखा चुन है, धरमा रही है, घबरा डर रही है, घर्माती नई-
 नवेली दुनडिन की भाति। न जाने क्यों फिर फिर में चाकू चलने लगे।
 घरे घा गने क फिर, जग घोरज घर। घब कुव ही घटी की बात है।
 नग घुग टनाज हा जाएगा। फिरदंद का सघुक्त इलाज मेरी जेब में
 है।

प्रधुन न बटून-भी चीजें खरीदी है। रेखा उसे रोच रही है और मैं
 बडाशा दे रहा हूँ - खरीदो, खरीदो बच्चे ! कुछ खरीदो ! लेकिन यह
 क्या जान है - बडा कहन मेरी खदान कटती है। खर, खरीदो बच्चे,
 सगेदा, घुव। घरी जेर मे कपने हैं, बटून है। घरी-भर बाद ये सब मेरे
 किस काम आएंगे भला ! सभीको खर्च कर दिया जाए।

विनमा था गया। विनवर कौन-सी है, यह जानने से मुझे क्या
 मगकान है ? मैंने टिकट खरीदे है। टिकट लेकर चल दिया, फिरती
 लेना घुव गया। वह घुगार रहा है - फिरदंदी वापस लीखिए साहब।”

कापी माई के ही या माने जान एक जो । मेरे दिन काप ही है वे मर
भीने ।

काप में डक का बीडे । गिरफ्त मुक ही गई है । बसत मार में काप
बन रहे है । कापून हीग है, मरित का माग मुन गिर में कापन प्रमा
होगा है । काप नदी इतना गेन क्यों ही रहा है ? कापन कापन कोप
मर रहे है, नीच निपना रहे है, या कापन कापन रहे है या काप हो रहा
है ! कुन को ही । मेरी निक्कर देख रहा है । का हीकाता को कुन को
नदी । काप काप काप है ? काप को रग-बिगो नखे का रहे है, का रहे है ।
कापना को मेरी कापों पर मारा है । काप काप काप है ! कापन कापना
कापन काप है । कापन कापनकापना होगा । कापना कापना कापना होगा ।
मेरिन दिग्गिर ? केका को कापी की कापी दिग्गिरी के निग ? कापे
काप रे मुन ? काप, नू मुन है मे ? कापने काप ? "केका, मुनके मुन ?"

"काप ?"

"कुन नदी । गिरफर है मानमार । क्यों है न ?"

रेना मेरे मुन को काप रहा है ।

कापना ही मे उठ काप हुआ है । रेना कापन गई है । "क्यों ?
काप हुआ ?"

"कोक, कापी बननी ही गई, रेना ! कापी कापना मे काप निग्ट में ।
कापी कापना । कापी ।" काप मे काप देना है, कापन कापनी है, काप रहे
है, काप रहे है । काप का मुनकाप है काप । मेरे काप के उरमुन ही काप
है ।

कापी दल, काप मुन कापना ही । हिम्मत करो । काप हीन तुम्हें
काप सकता है ! तुम्हारा मरगार, कापना कोप तुम्हारी जेन मे है ।

कोफर मे मेने काप दिया है कि मेन कापन को निक्कर काप होने
काप मे जाए । काप मे कापी स्टार्ट करके काप के काप काप काप ।
काप कापने मे कापी की । मेने कापने से पूछा, "काप काप काप मे है ?"

"जी हा," उनने काप, "काप कापन कर सु ?"

"मे स्वपं चला जाऊंगा ।" काप मे कापी-कापी कापन रकना हुआ
काप चला गया ।

... टेबल के सामने काप काप बना रहा था । उनने काप

में एक छौनिया निपटा हुआ था। वह गुसल करके निकला था। मैंने कहा, "राय, मैं था पहुंचा।"

वह धूमकर लड़ा हो गया। भय से उसका चेहरा फक हो गया।

"इरो मत, इरो मत! यह कहो, क्या तुम रेखा से शादी करने को तैयार हो? क्या तुम उसे और उसके बच्चे को भाराम और बकावारी से रख सकते?"

जीविए साहब, क्या दिलचस्प सवाल मैं कर रहा हूँ! सभी-सभी तो मैं रेखा को छगाई की संभूटी पहनाकर घाया हूँ, और सभी यह सवाल कर रहा हूँ। मगर इसमें धारपर्य की बात क्या है! दुनिया में बहुत-सी दिनचस्वियाँ हैं। एक यह भी सही।

"हां, राय, जवाब दो।"

राय एकटक मेरी ओर देख रहा है। एक सैनानी मुस्कान उसके होंठों पर छा गई, वह कहता है:

"क्या रेखा ने धापसे कुछ कहा है?"

"गब कुछ।"

"खैर, धपटा ही है।"

"कहो, तुम उसमें धादी करोगे?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं? क्या तुमने रेखा को घर से बेघर नहीं किया? उसे तुमने धामिधारिणी नहीं बनाया?"

"वह स्वयं मेरे गिर घा पड़ी। वह तुम्हें धृणा करती है।"

"और तुमने प्रेम करली है! तो तुम उससे धादी क्यों नहीं कर लेते?"

"तब तो जो-जो धोगने मेरे साथ सोड़ी हैं, मुझे उन सबसे धादी बननी पड़ेगी?"

"बदमाश, धृणा!" और मैंने रिवास्वर निकाल लिया है। राय की धामने खैल गई है। उनमें कुछ कहना चाहा, पर होंठ हिलकर रह गए हैं। मुँह से बात नहीं फूटती है। वह बापरुम की ओर लिसक रहा है।

मैंने कहा, "हिलना नहीं। रिवास्वर में बाटू धोगियाँ हैं।"

घोर वह चीने की तरह मुझपर दूट पड़ता है। जमने मेरी कला पकड़ ली है। हम गुब रहे हैं। यह प्राणों का युद्ध है। मैंने उसे घ पटका है। उसका मिर पट गया। वह घायल साह की भांति करा रहा है।

मैंने रिवाल्वर को फिर जांच लिया है। मेरी उंगली थोड़े पर है मैंने उसे दबोच रखा है।

“सब बोल, शादी करेगा ?”

“नहीं।”

“नहीं ?”

“नहीं।”

“तो ले।”

घाय !

घाय !!

घाय !!!

सब क्षम्य। खेन खरम। मर गया कुत्ता। गोनी ने भेजा फोड़ दिया। कितना सून निकला है !

घोर एक बार देखकर मैं चल देता हूँ। बेबी चीखती हुई भाती है। एक नौकर भी है।

“हाथ ऊपर करो !” मैंने कटककर नौकर से कहा। नौकर हाथ उठाकर खड़ा हो जाता है।

“रास्ता छोड़ो !” मैं बेबी को एक घोर धकेलने हुए सीधे घाना हूँ। चौकीदार घोर माली गाड़ी की राह रोके खड़े हैं। मैंने रिवाल्वर दिखाकर उन्हें डरा दिया है।

घोर मैं धर लीट रहा हूँ। सामने की घड़ी में प्यारह बज रहे हैं। सभी रिवाल्वर मे तो गोलिया घोर हैं। क्या हजरे है एक घोर लफें कर दू ! यहाँ कौन मेरा हाथ रोकेगा ! लेकिन एक बार देगा को घोर घांग भर देल लू !

मैं धर भा गया हूँ। देखा पागल की भांति दोरी घाई है। उसने चेहरे पर रक्त की एक भी बूंद नहीं है। मैंने उसे बना दिया है कि मैंने

... १२ बना है। मैं उससे अनुरोध कर रहा हूँ कि वह घाना

एक नर्म-नर्म घर्षितगन मुझे दे, घोर मेरे कंठ में गनवाही टावर मुझे
गौनी मार दे : कृष्ण रगना दिक्कत नहीं होगी, फनपटो...पर यह बेहोश
हो गई है। मेरे मन की मन में रह गई। उसका गिर फट गया है।

उसे बिन्दार पर लिटाना चाहिए। मैं उठा रहा हूं। घर में भर
रहा हूं।

परन्तु यह सीरिए, पुमिग घा गई। "घाएए, घाएए।"

"जी हां, मैंने शापद एक घाइमी की गोनी मार दी है। सीरिए
यह रिवाजगत है। हमसे अभी नौ गोमियां घोर है। हां, हां, मैं चरने की
नेमार हूं। मेरिन उरा-ना ममघ सीरिए। रेखा बेहोश हो गई है। इनके
गिर में फोट मग गई है। उरा मैं इनके लिए..."

"धमा सीरिए, मिण्टर दल, हम मजदूर हैं। घाओ अभी फलना
चाहिए।"

"तब साधारो है। खलिय लाहूब।" गव नीकर-धाकर घा जुटे है
प्रघुमन भी जग गया है। यह रो रहा है। 'ईंही, ईंही' पुकार रहा है।

घब मैं क्या बटूं ? क्या बरू ? क्या कर सकता हू ?

"बेटे मेरे, ममी का ध्यान रखना।" मेरे मुह से निबसा। घांगू
की निबसे, घोर निबलने चले जा रहे हैं। कुरा मापी रो रहा है। यह
रोने-रोने मेरे बचपों पर गिर गया है। मैं बह रहा हूं। "रामू, मामनिग
का ध्यान रखना। अभी डाक्टर को बुना मिला। मो दे चाभिया है।"
चाभियों का गुणदा जेब में निबालकर मैंने जमे दिया है।

"खलिय लाहूब !...मैं जा रहा हूं रेखा, मैं जा रहा हू, जा रहा
हू खलिय, मैं...मैं जा रहा हूं। बिदा, धनबिदा !"

रेखा

घर के ही चिराग में घर में घाग लग गई। घपने ही हाथों में घपना घृहाण सुटा दिया। हाथ रे भाग्य। इमे ही कहने हैं स्त्री-बुद्धि, सर्वसहाय-कारिणी बुद्धि। पैदा होंगे ही मैं क्यों न मर गई। मो-बाग ने गवा घोट-कर क्यों न मार जाना। जैसे सापिन घपने ही बच्चों को मा खालती है, जैसे ही मैंने मोने का घर कूक दिया।

साज भी मैं निलेखी कहाँ नरु कलुं ? घब तो घन-घर, द्वार-द्वार मेरी ही यजोगाथा का कथान हो रहा है। ऊँचे घर की बेटी घौर ऊँचे घर की बहू, उच्चशिक्षा प्राप्त मैं घन्य में कुतिया बन गई। दर-दर, गनी-गनी कुत्तों के साथ मारी-मारी फिरने वाली कुतिया। हाथ राम !!

कैसी भयानक है यह इन्द्रिय-वासना, जो समाज के सारे ही बाँचे को छिन्न-भिन्न कर खालती है। परन्तु एक घनहाय निर्वल नारी को समाज ने किसलिए केवल वासना का माध्यम बनाकर घर में रख छोड़ा है। पुरुषों को हजार काम हैं, जिम्मेदारियाँ हैं। उनकी समूची चेतना सारी ऊर्जा-शक्ति उसमें उलझी रहती है। केवल विश्राम के बल अजरा मस्तिष्क खाली होता है, वासना का आनन्द वे अभोग करते हैं मानसिक भोजन के रूप में। पर स्त्रियाँ तो चौबीसों घंटे वानना में सदा बोर होती रहती हैं। उन्हें न कोई काम है न जिम्मेदारियाँ हैं। मस्तिष्क शून्य रहता है और समूची चेतना वनाब-शृंगार और वासनामूलक प्रसाधनों और चिन्तनों में डूबी रहती है। उनका यही काम रहता है कि दिन-भर पुरुष के आगमन की प्रतीक्षा करती रहें, और रात-भर वासना की भाग में जलें, मूर्नें। पुरुष की प्रतीक्षा पूरक रूप में नहीं, जीवनसाथी के रूप में नहीं, वासना-पूति के माध्यम के रूप में। कैसी

भयानक है यह एकांगी समाज-व्यवस्था ! सरल, बहुत सरल । स्त्रियों का प्रविवसित भस्तिष्क, भात्रुक हृदय यदि शासना के भावेश में अपना संतुलन खो दे, तो यह केवल उसीका दोष नहीं है, समाज-व्यवस्था का भी दोष है ।

यौन भावेग मनःशारीरिक भावेग है । इसमें एक वह शरीर-भावेग है जिसका सम्बंध जननेन्द्रियों की परम उत्तेजना के बाद कारण पर सीमित है । दूसरा वह जो प्रत्येक जोड़ीदार में एक-दूसरे के निकट शरीर से मानसिक सम्पर्क स्थापित करता है । यौन प्रक्रिया बड़ी जटिल है । उसका सम्बंध मनःशारीरिक भावेग से है । घरेलू जानवरों एव सम्य मनुष्यों में ही यह एक सरल क्रिया है, परन्तु प्राकृतिक अवस्था में यह कभी सरल नहीं है । भावेग की परम प्राप्ति के लिए पुरुष को प्रतिशय क्रियाशील और धारम-अदर्शन तथा स्त्री को दीर्घ साधना और ध्यान रना पड़ता है । मूल लक्ष्य यौन स्पीत की वृद्धि है । वह दोनों में मान रूप से, पूर्वरोग द्वारा, जो शारीरिक भी हो और मानसिक भी, होना चाहिए । इस यौन स्पीत की घोमी-तीव्र गति ही में प्रेम की ओर बपी होनी है, सिधी हुई औरत अवश अवस्था में एक पुरुष को त्याग कर दूसरे पुरुष तक पहुंच जाती है, और यह भूल जाती है कि उसका कोई सामाजिक रूप भी है या नहीं ।

स्त्रियां दूरदर्शिनो नहीं होतीं । उनमें स्वाभाविक दुर्बलताएं भी हैं और मानसिक भी । इसीसे समाज ने उन्हें अपने नीति के बंधनों में कसकर बांधा हुआ है । धान तो मैं उन सब बंधनों के महत्त्व को, आवश्यकता को समझ गई हूँ । कल तक ही तो मैं उन सब बातों का प्रबल विरोध कर रही थी । तब मैं नहीं जानती थी कि मनुष्य का सामाजिक संगठन ही उसके व्यक्ति के सब स्वार्थों का संरक्षण है । पर 'भव पछनाए होत क्या, जब चिहियां भुग गईं सैत !'

किन्तु सब दत्त की रक्षा कैसे की जाए ? मैं अपना शरीर, प्राण और भावरू तक दे सकती हूँ । मैं जान की बाड़ी लगा दूगी और प्रत्येक मूल्य पर उनके प्राणों की रक्षा करूंगी । मैंने बेबी को मिला लिया था—यह राजी भी हो गई । और हमने तय किया कि हम अपना स्वयं बदल देंगे । यह बयान दे देंगे कि हूया मैंने की है । बेबी गवाही देने को राजी

शिष्ट पुरुष समझते हैं कि व्यवहार में प्राइमो का जगदा कुछ नहीं
 विगडता। शरीर को धो-धोकर साफ कर लिया जा सकता है। वे
 प्रेम को महत्त्व देते हैं; काम-वासना का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं,
 परन्तु वे भूल जाते हैं कि कुछ संकटकालीन परिस्थितियां भी होती हैं,
 जब स्त्री की, पुरुष की और कभी-कभी सबकी कुर्बानिया करनी पडती
 है। तब मुख-मुविधा और व्यक्तिगत अधिकार नहीं देखे जाते। दुनिया
 में युद्ध होते रहे हैं और तब लाखों मनुष्यों को रणायण में जूझ मरना
 उनके जीवन का सर्वोत्तम ध्येय माना गया है। परन्तु जीवन का सर्वो-
 त्तम ध्येय हंसी-मृत्ती में जीवित रहना है, मरना नहीं। पर यह प्रापत्ता-
 लीन धर्म है।

हो सकता है कि स्त्री-पुरुषों को गृहस्थ-जीवन में शारीरिक बाधाएं
 हों मानसिक बाधाएं भी हों— इतनी बड़ी, इतनी गक्तिमान कि जिनके
 कारण जीवन का सारा आनन्द ही खत्म हो जाए। उस समय स्त्री या
 पुरुष दोनों को अपने उच्च चरित्र का, त्याग और निष्ठा का महारा
 लेना चाहिए, वासना का नहीं।

राय जैसे सम्पट समाज में बहून हैं। वे लोग मम्म समाज के कीड़े
 हैं, सम्पना की मर्यादा को दूषित करनेवाले। घाय उन्हें सह सकते हैं,
 बर्दाश्त कर सकते हैं। क्योंकि घायमें सत्माहस का अभाव है, स्वभाव
 की दुर्बलता घायमें है। पर मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैंने उसे बर्दाश्त
 नहीं किया। एक गन्दे कीड़े को मार डाला। समाज को एक अपवित्रता
 में मुक्त कर दिया।

अभी जेल से अदानत घाने हुए मैंने देखा है अदानत के बाहर
 हजारों नर-नारी मेरे लिए दुआ माग रहे हैं। सासकर नारिया बहुत
 उत्तेजित हैं। वे सब मेरे सम्बंधन में हैं। वे समझती हैं, मैंने ठीक किया
 — समाज के खतरे को खत्म कर दिया, नारी की पवित्रता का घमा
 पोक्ष दिया। वे नांग चाहते हैं कि मैं हत्या के अभियोग से मुक्त हो
 जाऊ; पर यह मैं कैसे चाह सकता हू।

इतना भारी मैंने समाज का उपकार किया है, और घाने चरित्र
 को प्रतिष्ठा की रक्षा की है; परन्तु कानून को घाने हाथ में लिया है।
 मेरे लिए यह आवश्यक था, अनिवार्य था। अब कानून अपना काम करे

मुझे उराठा दण्ड दे। मैं नहीं चाहता कि लोगो के सामने यह उदाहरण कायम हो जाए कि कानून को हाथ में लेना व्यक्ति के लिए उचित है, और अनधिकारी लोग ऐसा करें।

घसाधारण काम असाधारण पुरुष ही कर सकते हैं, जिनमें असाधारण क्षमता, शक्ति और धैर्य हो। वही असाधारण काम मैंने किया है। इसीसे मुझे अपने ऊपर, अपने काम पर गर्व है। आप कह सकते हैं कि मैंने कानून के विरुद्ध काम किया है पर भाव यह नहीं कह सकते कि मैंने नौति-विरुद्ध काम किया है। आप मुझपर कायरता का आरोप भी नहीं लगा सकते, जोकि एक अत्यन्त घृणित आरोप है। इस यही मेरे लिए मयेष्ट है।

आप कहेंगे, रेखा का भी तो दोष है। वह भी तो वासना के बहाव में बह गई। उसने तो कुलटा का साधारण किया, पति से विश्वासघात किया, पर-पुरुष को अपना देह सौंप दिया। उसे क्यों नहीं मार डाला ?

ठीक है, आप शायद यही करते। राय को मार डालने का शायद आपको साहस न होता। पर मैंने ऐसा नहीं किया। रेखा पय-भ्रष्ट हो गई। कुलवधु की मर्यादा उसने भंग की, मेरे साथ विश्वासघात किया। सब ठीक है। उसके विरुद्ध ऐसे ही और भी आरोप लगाए जा सकते हैं, जो साधारण नहीं हैं। समाज और गृहस्थ-धर्म की पवित्रता को भंग करने की दृष्टि से वे राय के अपराध से कम नहीं हैं। मैंने रेखा को गोली नहीं मारी। उसे अपनी सब सम्पत्ति की स्वामिनी बना दिया। परन्तु आपने रेखा नहीं, वह दण्ड से बचित नहीं रखी; उसने अपने-आपको स्वयं ही दण्ड दे डाला। ऐसा दण्ड जो मृत्यु से बहुत अधिक भीषण और कष्टकर है।

मैं घोषित करता हूँ कि इसे जीवित रहने दिया जाए—सब सुख-सुविधाओं के साथ समाज के बीच। और दुनिया को देखने का अवसर दिया जाए कि रेखा के समान वाहना का शिकार बननेवाली कमजोर मन की स्त्रियों को अन्त में कैसे दिन देखने पड़ते हैं; उन्हें समाज से कट-कर, समाज की विच-दृष्टि में तिरस्कृत और दर्द-भरा असह्य जीवन व्यतीत करना पड़ता है—स्वीडन के सब आशीर्वादों, सम्मानों, आनन्दों, सुरक्षाओं और पुण्यों से रहित।

का कुतूहल के समुदाय विचार हों तो बर्हिदा। दुर्भाग्य ही यथापय या प्रकृतिक
को कायकिकता की दे सकना, और वह विचार देना ही विदितिक
होती उपायिक है। और और उपाय है कि उनके कर्णों पर प्रकाश दिना
का, यह वह कि उनके कर्णों को उनके कर्णों के कर्णों का कर्ण
मिना ही वह कर्ण।

रेखा

प्राज्ञ साजन की विदाई का दिन है। मूल रहे हैं वे। मेरे साजन।
मेरे कृष्ण कन्हैया। देखो लोगो ! देखो। धरी कुलवधुषो, भले धर की
बहुषो, तुम भी देख लो। अपनी बड़ी-बड़ी प्रांखो का सुफल ले लो।

हां, हा, मैंने ही उन्हें उस झूले पर चढ़ाया है, उनके प्यार का बदला
चुनाया है। कौन धौरत मेरे इस नाम से बराबरी करेगी !

धरी, वे मूल रहे हैं। गामो, गौन गामो। बड़ी भारी बरमान धारी
है। सावन-भादों की झड़ी लगी है। काले-काले बादल उमड़ रहे हैं
गरज रहे हैं बहरा। सावन में सब सजनी सूजती है। प्राज्ञ मेरे साजन
मूल रहे हैं। गामो री गामो, चुन क्यों हो ! क्या सब मर गई ! दुनिया
में इतनी धौरतें हैं, धर मैं धकेली ही गा रही हूं। कोई मेरे मुर में मु
नहीं भिजाती। क्यों ? धरी सावन है, सावन क्या रोज-रोज घाटा है
गामो, गामो।

सुनना सुनाओ

सुनना---

धोह ! सावन-भादों की यह झड़ी ! दूध बार बरसकर चापद रि
कभी न बरसेंही वे घासें। कच्छ बरसो, बरसो। धरी बरसो, सु
बरसो। मेरे साजन सूज रहे हैं। सूजो, प्यारे सूजो। सुब सुब भिन्न ग
है ! घासें घुड़ गई हैं। बदन निदान हो गया है। बागो मूठ धौर
निसरद हो गए हैं। धीक, धीक ! धानन्दादिरक की यही ठो पगल
है। धर इस बार धकेने ही यह धानन्द निजा ! मुझे यही धौर दिवा
धकेने ? मना कहीं दुनिया में, लंक में, दरवाक में धौरत धकेने र
को है ? धौरत क्या धकेने रूने की विधान में धिरयो है ! धर मु
को सुना लो। धो प्यारे,

हृदय, पीरज घर । संयोग-वियोग तो दुनिया के धन्दे हैं,
 ढोर बन पधर्मी !... दूर रहो सब, दूर रहो । मुझे सूना
 भूमने दो इस भूमि को । साजन या रहे हैं भाज । हाँ बेटा !
 उन्हें ले जाएँ । फिर उन्हें विदा भी करना होगा । मैं प्रभा-
 ती क्या सकती हूँ ? उन्हें जाना होगा, मुझे रहना होगा ।
 हाँ ! चलो मेरे लाल !

रहा है :

साज गवनवा की साम ।
 उमर मोरी भजहुँ है वारी ।

भाज ० ।

साज-समाज पिया ले जाएँ,
 लाएँ कहरवा चार ।
 कदिया किनारे बालम मोरा रतिया,
 देत धूषट पट डार ।
 साज गवनवा की साम ।
 उमर मोरी भजहुँ है वारी ।

